समुद्र के फेन

शारदा प्रकाशन : बनारस : २००४ वि०

बड़ा दिन
२००४ वि०
प्रथम संस्करण —— सर्वाधिकार सुरक्षित
शारदा प्रकाशन, रामघाट, बनारस, के लिये
ह० मा० सप्रे द्वारा श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस में मुद्रित

प्रिय,

श्रीकृष्णचंद्र—

को

अनुक्रमणिका

मुर्दे

डूबते सूर्य्य की किरणें नदी पर फिसल रहीं थीं। पानी के भीतर से प्रकाश पीला होकर बाहर फूटने का प्रयत्न कर रहा था। चारों ओर निस्तब्धता छायी थी। केवल कुत्तों के भूकने से कभी कभी सन्नाटे की पर्तें हटती थीं, चटक जाती थीं और फिर काली काई की तरह आ जुड़ती थीं। मरघट की उस वीभत्स छाया में न जाने किस किसकी चिता जल रही थी।

बाबा की चरन पादुका के चौतरे पर अब कोई न था। थोड़ी देर पहले ही वहाँ कुछ बाबू लोग बैठे थे। उनके मुख पर उदासी थी, संसार के प्रति विरक्ति, जैसे इस संसार में कुछ न हो। और वह चिता भी अब ठंडी हो चली थी जिसकी लपटों के कारण बीस-बीस हाथ दूर बैठना दुश्वार हो गया था।

चारपाई पर बैठा हुआ मनीराम खाँस उठा। वह बूढ़ा है, शरीर पर गेरुआ वस्त्र है, बायें हाथ में लोहे का एक कड़ा, दायें हाथ में माला। शरीर काफी बलिष्ठ लगता है।

'बाबू', मनीराम की आवाज गूँज उठी—'सहर गया था ?'

'गया न था ?' बाबू हाथ में गिलास लिये पानी पीते-पीते बाहर निकल आया।

'तो ?' वृद्ध का स्वर फिर गूँजा। बाबू एक जवान आदमी है, हल्की मूँछें हैं, कोई चिन्ता न करता सा वहीं बैठकर गिलास औंधा दिया और बोल उठा—'नौकरी नहीं की जाती जैसे तुम कहते हो।'

'क्यों ?' वृद्ध ने रूखे स्वर से कहा—'रोटियाँ लग गई हैं बेटा। नहीं की जाती ? और यहाँ मुर्दों में आग नहीं दी जाती ? तो खाओगे क्या ?'

'मैं घर छोड़ दूँगा।' बाबू ने छोटा सा उत्तर दिया। वृद्ध ठठाकर हँस पड़ा और फिर उदास-सा हाथ की माला फिराने लगा। बाबू उठकर चला गया। यह रोज की बात थी। किसीने भी इसे महत्त्वपूर्ण नहीं समझा।

(२)

बाबू थोड़ी देर तक इधर उधर घूमता रहा और फिर विश्रांत सा लौट आया। कोठरी में घुस गया और दो रोटी हाथ पर निकाल लाया। चुपचाप खाने लगा।

बूढ़े मनीराम ने सिर फेर कर कहा—'बाबू ?'

'क्या है ?' बाबू ने कर्कश स्वर में उत्तर दिया। जैसे वह बात नहीं करना चाहता था।

मनीराम ने कोई चिन्ता नहीं की। वह कहता गया—'क्यों रे ? दो घण्टे पहले वह एक बच्चा गाड़ गये थे, उसका रेशम का जरीदार दुपट्टा निकाल लिया ?'

बाबू ने कुछ नहीं कहा। रोटी वहीं धर दी। जाकर फावड़े से खोदने लगा। कीचड़ में से चीत्कार की सी ध्वनि आयी और कुछ ही देर में बाबू के हाथ में वह महीन रेशमी दुपट्टा चमक उठा। पल भर वह उस बच्चे की लाश को देखता रहा, और न जाने क्यों एक बार काँप उठा। फिर निगाह हटा ली और साहस करके गड्ढा ढँक दिया। बेचारा मुर्दा? उसे क्या खबर। क्या उसका, क्या पराया। वह तो कुछ कह नहीं सकता।

बाबू ने विषाक्त नयनों से देखते हुए दुपट्टा मनीराम पर फेंक दिया। मनीराम हँसा और बोल उठा—'बेटा! एक दिन मैंने तुझे ऐसे ही अनाथ के रूप में पाया था, तभी से पाल लिया।' और उसने कुछ नहीं कहा। बाबू यह बात कई बार सुन चुका था। उसकी साँस चल रही थी, वह गड़ा हुआ न था, तभी तो पाल लिया वर्ना यह कभी......

और श्रद्धा घृणा से लड़ती, पिता का अस्तित्व अकर्मण्यता से संघर्ष करता......

बाबू और अधिक विक्षुब्ध हो उठता था। बूढ़ी भिखारिन कुछ गुनगुनाती हुई एक झाड़ी से निकली और आकर पहले पेड़ के नीचे बैठ गयी। उसके चारों तरफ कँटीले तार खिंचे थे, कोई उन्हें पार करके उसके पास तक जाना नहीं चाहता था, या जा नहीं पाता था।

बाबू को शहर की याद आने लगी। क्यों न लौट जाये वह शहर? जब पेट का ही सवाल है तो क्या वह अपना भी पेट न भर सकेगा? यहाँ जिंदगी क्या है? एक चिता की तरह सदा भभकता हुआ दिल और फिर राख, जिसे उठा कर बहती हुई नदी

में छोड़ देना है, कोई चिन्ह नहीं, कोई नतीजा नहीं। बुड्ढे ने जमाना देखा है, जब कुछ बल नहीं रहा तब, आकर मरघट में खाट डाली है और कैसा कठोर दिल है,......अधजली लाश नीचे पड़ी है, मगर मजाल है कि दो लक्कड़ भी धर देने दे। कहता है—'बेटा उतरा मुँह देखकर खैरात करेगा तो तेरे पास क्या बचेगा ? इस दुनिया में हँसनेवाले तो इने-गिने मिलेंगे। वरना सारी दुनिया में रोते चेहरे ही दिखेंगे जो हँसेंगे भी तो लगेगा कि खिसिया रहे हों। हँसेंगे कैसे बेटा ? हँसने के लिये दाम चाहिये दाम। अगर मैं ही सरकार को दाम न दूँ तो तू समझता है कि ठेका मिल जायेगा मुझे ?'

बाबू साधुन के पास जाकर बैठ गया। उसको पास आया देखकर साधुन ने उसे एक भद्दी गाली दी और हँस दी। बाबू मन ही मन सकपका गया, फिर भी हटा नहीं। कहा—'भाई ! इतने दिन हो गये लेकिन कभी हम पर तेरी दया नहीं हुई ?'

साधुन ने फिर गाली दी और उसकी बाकी आवाज एक बधिर घरघराहट में डूब गयी। जैसे नदी में भँवर पड़ते हैं, उनमें से असंख्य स्वर उठते हैं किन्तु उनका मनुष्य के लिये कोई उपयोग नहीं होता। साधुन प्रायः अधेड़ थी। उसके बाद वहाँ असह्य नीरवता छा गयी। उसने कुछ नहीं कहा। बैठा बैठा बाबू ऊब गया। आकाश के उदास नक्षत्र निरन्तर उसीकी ओर देख रहे थे, किन्तु बाबू ने कभी उस ओर किसी संलाप के लिये दृष्टि नहीं उठायी। साधुन शांत थी, ऐसी जैसे पास के टाल में लक्कड़ पड़े थे।

बाबू को याद आया, वह बचपन से उसे यहीं देख रहा है। ऐसे ही, ऐसे ही, हाँ, अब वह बूढ़ी हो गयी है, तब अधेड़प्राय

थी। तब वह बहुत हँसती थी, तब उसके पास ज्यादा लोगों की भीड़ आया करती थी, जिनमें अधिकांश तांगेवाले होते थे या इधर-उधर के ऐसे ही काम करनेवाले लोग। खूब दौने लाते थे, सामने रख जाते थे और कई तो रात को यहीं पड़े रहते थे। कहते हैं साधुन कोई बाल विधवा थी। सब कुछ चला गया तो पागल सी हो गयी थी। तभी से भगवान के चरणों में चित्त लग गया और आज तक वैसे ही चल रही है। पहले हँसती अधिक थी अब गाली अधिक देती है......

बाबू चौंक उठा। साधुन की कर्कश आवाज उसके कानों को फाड़ उठी—'हट, भंगी, डोम नहीं तो। दूर हट।'

बाबू भय से पीछे हट गया। अपमान का यह अनाहत स्वर सुनकर केले के पत्ते की भाँति उसका हृदय हिल उठा। यह एक स्थिरप्राय वस्तु उस चलती फिरती सशक्त वस्तु का तिरस्कार कर रही थी और वह भी मरघट में जहाँ सब बराबर थे, जहाँ कल ही शहर का इतना बड़ा सेठ रमिया चमारिन की पास की चिता की बगल में पड़ा-पड़ा चुपचाप जल गया था। बाबू का ध्यान टूटा, देखा—कछार के नीचे की तरफ रोज की तरह अल सुबह आकर वही कुछ नावें रुक गयीं थीं और लोग सिर पर बड़ी-बड़ी डलियों में बड़े-बड़े काशीफल लेकर उतर रहे थे। वे ऐसे ही हर नयी ऋतु में नये फल या सागभाजी लेकर पास के गाँव से उतरते हैं और सामान खरीद कर लौटते हैं। एक बार बाबू ने पूछा था—'मरघट के अलावा तुम्हें कोई रास्ता नहीं है?'

तो एक ने कहा था—'क्यों इस रास्ते में क्या बिगाड़ा है? एक येही है जहाँ गाँव के सबसे पास इस किनारे पर आबादी है।'

'आबादी !' बाबू का विकार हँस पड़ा। मरघट में भी जो आबादी है, मनुष्य उसी के लिये व्याकुल है !

और आज कोई बूढ़ा कह रहा था—'हमने तो कह दी, बेटी का व्याह करना आसान नहीं है, जो तुम खेल समझ रहे हो। हमने न कही, बिरादरी के पचास जीभ हैं तो सौ कान हैं......

'देख के दादा, देख के...,' दूसरा स्वर उठा—'बचा के, हाँ, देखी वहीं, वह अधजली लाश पड़ी है.........'

बूढ़ा रुक गया, बोल उठा—'छूट के भी नहीं छूटा, मिट्टी भी किनारे न लगी। कोई गरीब रहा होगा। मिट्टी भी नहीं सिमटी...'

जवान ने फिर कहा—'दानी सेठों ने यहाँ लकड़ी मुफ्त कर दी है सुनते हैं...'

बाबू का हृदय झनझना उठा—'अब उसकी कौन गत सुधारनी है ? जीते जी सुख नहीं मिला, मर कर जला न जला, परलोक सुधरेगा ?'

एक व्याकुल भूखी हँसी उसके होठों पर तड़प उठी। और नावें लौट गयीं। फल और सब्जी वाले चले गये थे।

(३)

पौ फटने में अभी प्रायः दो घंटे की देर थी। आसमान में तारे बिखरे हुए थे जिनकी छलना में पृथ्वी पर यह मरघट अत्यन्त शक्तिमान प्रतीत होता था। अंधकार में दो एक चितायें दीपक की तरह जल रही थीं। बाबू खाट पर पड़ा ऊँघ रहा था। एकाएक दूर से आवाज आयी—'साधो आये वृन्दावन, सबको आना वृन्दावन।' मुर्दा लाये हैं कोई और घाट पर से अब दिशा बदल ली है। बाबू उठ बैठा।

थोड़ी ही देर में कुछ मजदूरों ने आकर रेत पर एक अर्थी धर दी और टाल से सामान जुटाने लगे।

बाबू अर्थी से दूर खड़ा रहा, फिर न जाने क्यों सिहर उठा। जाकर चिता सजाने लगा।

'क्यों मुकुन्दा ठीक रहेगा यह लक्कड़ ?'

'उधर रखना सिर के नीचे।'

'कलुआ काका सब ठीक कर देंगे ?'

'तो जरा एक डुबकी तो दिलाला रे बुधुआ।' कलुआ ने कहा।

देखते ही देखते चिता धधक उठी और सबके चेहरे पर लपटों का उजाला तैरने लगा। बीड़ी का बण्डल हाथों पर चलने लगा।

सबके चेहरे पर उदासी के अतिरिक्त एक ग्लानि भी थी। बाबू ने स्वाभाविक स्वर में पूछा—'कौन था ? कैसे मर गया ?'

बुधुआ ने अनजाने ही कहा—'इसका एक हाथ गट्टे से कट गया।'

'हाथ कट गया ?' बाबू की आवाज भरी गयी, 'कैसे कट गया ?'

'मशीन के बीच में आ गया, कट गया।' कलुआ की आवाज में उसकी उदासीनता झलक आयी, पूरी मजूरी मिलती नहीं। जोश में आ गया था लौंडा, तभी चटक गया।'

बुधुआ को एक छींक आयी।

'क्यों बे ?' कलुआ का स्वर गूँजा—'नवाबों के से नखरे ?' और मुड़ कर कहा—'लड़ाई का जोश चढ़ गया था। कहता था हम मजूर न हों तो लड़ाई न चले। बस, चपेट में मारा गया।

कौन नहीं मरता ? मगर बीबी है, एक लौंडिया भी छोड़ गया है वह !'

और कलुआ ने सिर हिलाया जैसे यह भी खूब रही। बाबू ने देखा और बोल उठा—'तो कुछ हरजाना मिला ?'

'मिलेगा। कहते हैं।' बुधुआ ने धीरे से कहा। और झाँक कर कहा—'लग गयी ? क्यों भीतर पहुँच गयी ?'

मुकुन्दा ने झाँक कर आग को देखा—उसके मुख पर एक सूखी मुस्कान फैल गयी। धीरे से हँसा और कहा—'उससे कोई बचा है ?'

फिर सब चुप बठे रहे। चिता की आग धू-धू कर के जल रही थी।

'हवा तो खूब चल रही है।' मुकुन्दा ने न जाने किससे कहा।

हवा लपटों में फरफरा रही थी, आस-पास उजाला फैला हुआ था। चौतरे पर लंगोटी लगाये वही पतला दुबला बाबा बैठा था। उसके मुँह पर सन्तोष था। त्रिशूल पास ही गड़ा था। सामने ही हड्डी का कपालकुण्डल रखा था और झाड़ी के पीछे वही साधुन बैठी थी।

बाबू सुनता रहा। हृदय में कुछ कचोट रहा था। उसने धीरे से बुधुआ से कहा—'तो सच बे मौत मारा गया।'

'नहीं जी।' बुधुआ ने अलग से कहा—'जरा देरी होगी मगर हरजाना लेके रहेंगे। कोई दिल्लगी है। अब वे जमाने गये। हम क्या दबनेवाले हैं ? कौन जायदाद खड़ी है जो छिनेगी ? पेट भरने की लड़ाई। पेट भी नहीं भरेगा तो जीते ही क्यों हैं ? दबता तो मुर्दा है।'

कलुआ ने भी सुना। और उसके स्वर में एक तिक्त घृणा गूँज उठी—'नहीं देगा तो साले के कन्धों पर सिर तो रहेगा, मगर 'मील' नहीं चलेगी। आज इसके बखत चुप रह जायेंगे तो कल हमारी बारी न आयेगी? जीते हैं तो मेहनत से, हराम का नहीं खाते कि हमारे मरने जीने में फरक ही न हो।'

उसके शब्दोंका गर्व बाबू के हृदय पर बज उठा। अपमान के प्रति उसमें विक्षोभ था, शक्ति के प्रति एक जागरण। और बाबा चिता की आग की ओर ठण्डी आँखों से देखे जा रहा था, जैसे फिर भी उसमें कोई गर्मी न थी, कोई हलचल न थी।

'वह भी कोई आदमी है।' मुकुन्दा ने कहा—'जो रोते बखत दूसरे के काम न आया, अरे भीख माँग कर तो हम पेट नहीं भरते।'

बाबू के मन में एक तीखा बाण जा चुभा। क्या करता है वह यहाँ? दिनभर बाबाओं और उसी साधुन की खुशामद, चाकरी, कि वह कुछ बता दे, कि उसे एकदम रुपया मिल जाये, घृणा से मन सिहर उठा।

नीचे एक अधजली लाश पड़ी है, और क्षणभर को उसे लगा जैसे बाबा भी एक मुर्दा हो, एक मुर्दा जिसमें छाल के अतिरिक्त और कुछ नहीं, जिसे खाने पीने के सिवाय और कुछ नहीं, दुनिया की रफ्तार जिसके लिये नहीं रही, जो सुखदुख से परे हो गया है, यानी जिसके भीतर आदमी का दिल नहीं रहा है, जिसके जीने और मरने में कोई फर्क नहीं रहा है।

एकाएक कलुआ ने चौंक कर कहा—'भोर हो चली। उठोगे नहीं? कामपर भी तो चलना है।'

सब उठ गये। रात एक पल आँख नहीं लगी थी। सब चलने

लगे। एक बार बुधुआ ने रुक कर पलट कर देखा। कलुआ जैसे समझ गया। बोला—'वहाँ क्या है अब, जो रुक गया बेटा।'

बुधुआ चल दिया। हृदय भारी था। कैसे मुँह दिखेगा अब उसकी बहू का। बाबू देखता रहा। उसने देखा अब वे फिर जिन्दों की दुनिया की ओर लौट रहे थे।

(४)

बूढ़े मनीराम ने जोर से आवाज दी—'बाबू ?' कोई उत्तर नहीं मिला। बूढ़ा फिर चिल्लाया। जब कोई भी नहीं बोला तो झल्ला कर उठा और बाबा के पास जाकर चिल्ला उठा—'कहाँ भेज दिया है तुमने मेरे बेटे को ?'

लेकिन बाबा समाधि में लगे थे। वह उस आवाज को नहीं सुन सके। उसकी दुनियादारी के दुःख का स्वर उन तक नहीं पहुँच सका और जली और अधजली लाशों की तरह ही उन्होंने भी कोई उत्तर नहीं दिया......

घिसटता कम्बल

प्रभात की जिस वेला में कोयल का बोल सुनायी देता है रागिनी उसे अपने सुहाग का एकमात्र [illegible] समझ कर हर्ष से गद्‌गद हो उठती है। दूर एक पेड़ है, वरना इस मुहल्ले में पत्थरों, ईंटों और उनकी कठोरता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वह दूर-दूर तक देखती है। कहीं कुछ भी नहीं दिखाई देता। लौट कर जाती है, चूल्हे पर पानी रख देती है और घुटनों पर सिर रखकर सोचने लगती है। कुछ भी नहीं चिन्ता करने के योग्य, क्योंकि जो है वह चिन्ता ही है, चिन्ता के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

पानी में से एक आवाज आ रही है। उसकी ओर देखा। कुछ नहीं, उबलने की ध्वनि आ रही है। तो क्या इस जीवन में यह जो विभिन्न ध्वनियाँ सुनाई दे रही हैं वे और कुछ नहीं केवल एक उबाल का उपहास है जिसका रूप धीरे-धीरे धुँआँ बनकर उड़ता जा रहा है, ताकि शून्य में अपने आप लय हो जाय, कोई समझाने का प्रयत्न न करे, क्योंकि समझकर चलना कितना

कठिन है। अच्छा है वह बटोही जो नहीं जानता कि जंगल में शेर चीतों के अतिरिक्त बटमार भी हैं, लुटेरे भी हैं...

और रागिनी ने पतीली उतार कर रख दी। एक विवाह और विवाह के बाद जैसे यात्री के कंधे पर पड़ा कम्बल जो लटकता रहता है, मैला होता रहता है...कोई कहे कि मुसाफिर देख तो पीछे तू अपने ही निशान मिटा रहा है और लौट कर देखते समय कम्बल भी उठ जाता है। यात्री समझता है कि संसार उससे उपहास कर रहा था क्योंकि संसार को अपनी हीनता का कितना विक्षोभ है, अपदार्थ निर्वीर्यता !

(२)

याद आ रहा है धीरे-धीरे एक बीता हुआ इतिहास, जिसे इतिहास न कह कर विषाद की एक टेढ़ी-मेढ़ी रेखा कहा जाय तो क्या कुछ अनुचित है ?

दाल भी कितनी खराब है कि कमबख्त गलती ही नहीं। जाओ बाजार, बनिया कहेगा—इससे सस्ती तो है ही नहीं।

रागिनी झुँझला उठी। एक घण्टा तो होने को आया। कोई हद है...

फिर उबाल। जमीन की यह फसल इतनी कठोर है, फिर स्वयं वह ही कैसे इतनी जल्दी दब गयी? क्योंकि वह मनुष्य है ?

रागिनी मुसकरायी। कैसे बर्बरता है। लेकिन प्यार कहाँ है आजकल ?

उफ ! कैसी मिर्चों की झाँस उठ रही है। सौ बार सोच चुकी

हूँ कि जाकर पड़ोसिन से कहूँ कि बहिन एक घर में रहते हैं तो समझौता करके ही रहना होगा। नहीं भाती हमें तुम्हारी यह बात कि मिर्चें हवा के रुख में कूटने बैठ जाती हो?

पड़ोसिन बड़बड़ाती है। आजकल के स्कूलों की छोकरियाँ, जैसे परमात्मा ने इन्हें औरत क्या बनाया, दुनिया पर एक अहसान-सा कर दिया...

रागिनी का वह स्कूल का जीवन भी कितना भला था। वह मास्टरनियाँ कहाँ मिलेंगी अब? तब वह प्रेम करना चाहती थी। हर महीने 'माया' पढ़ती थी। पढ़ने को तो मन अब भी चाहता है, क्योंकि उसमें वह है जो वैसे नहीं होता, हो नहीं सकता...

दाल तो नहीं ही गलेगी। दो पहर चढ़ जायगा, दिन ढल जायगा...

बिपिन ने प्रवेश किया। नहा धोकर पट्टे पर आसन ग्रहण किया और कहा 'क्यों खाना बन गया?'

'बन कहाँ से गया? दाल तो ऐसी लाये हो जैसे भानमती का पिटारा। इसके सीझने की बेला आये, न उसके खतम होने की।'

मा बाप से नहीं पटी है तभी तो दोनों अलग रहते हैं। शहर में नौकरी लग गयी है। यह वही कहानी है जो आज बरसों से होती चली आई है। क्योंकि दोनों एक दूसरे को चाहते हैं। रागिनी नहीं चाहती उसके पति पर सबका अधिकार हो। जो उसका स्वामी है, वह उसकी दासी है तो इसलिये न कि अधिक से अधिक उसकी स्वामिनी भी हो सके?

एक मुस्कान की कटार चमकती है, दूसरे की मुस्कान कटार बन कर उस स्नेह की मार को रोकती है, फिर दुधारा इधर भी

काटता है, उधर भी, और वह पैनी गर्म-गर्म लोहे की टुकड़ी इधर भी उतरती है उधर भी, और वह उनकी परवशता की घृणा का प्यार है, जैसे बहेलिये से डरे हुए दो पक्षी एक दूसरे के पंखों में सिर छिपा कर गर्म होने का यत्न करते हैं।

'हूँ' विपिनका स्वर भारी है। 'तो गोया दालवाले को भी हमारा साला होना चाहिये।'

रागिनी चिढ़ गयी। उसने कहा—'जी हाँ साला नहीं तो भाई होना ही चाहिये।'

एक तरेर। रस्सी खिंच गई है। उसपर अभिमान नट बनकर अपना कौशल दिखाता हुआ चल रहा है, जैसे सैनिक शिक्षा पाते समय हाथों से पकड़ कर झूलते हुए रस्सा थामकर नदी पार करते हैं।

पति और पत्नी। दास और दासी। अभिमान और ऐंठन। अच्छी भाषा में देवता और पुजारिन, एक रुपया और चवन्नी।

विपिन कहता है—'तो मैं जा रहा हूँ। सरकार की नौकरी है। वहाँ जाने के लिये जरूरी नहीं है कि दाल खाकर ही जाना चाहिये।'

'तुम्हें मेरी कसम है। खाने के लिये सारा जीवन है। वही नहीं है तो फिर सारा संसार किस लिये है।'

और विपिन कहता है—'खाने को या तो है ही नहीं या है भी तो उसके खाने का समय नहीं है।'

रागनी के मुँह पर उदासी चढ़ती है, जैसे पारदर्शी फाउन्टेन-पेन में स्याही चढ़ती हुई दिखाई देती है......

विपिन देखता है, कितना क्षुद्र है वह! संसार में अनेक कार्य

हैं, अनेक-अनेक महापुरुष हैं, अनेक-अनेक शक्तियाँ हैं, किन्तु वह कहीं भी कुछ नहीं है। उसकी असमर्थता ऐसी है जैसे टूटे हुए गिलास के शीशे के टुकड़े। वह केवल घिसटता चला जा रहा है।

उन आँखों में एक उदास छाया है, उनमें दर्द हैं, प्राणों की कसक है। व्यक्ति का प्यासा हृदय बुला रहा है, किन्तु घड़ी में दस बज रहे हैं, जैसे प्रेम की सीता की ओर दस मुखों से रावण बोलता हुआ देख रहा हो, घूर रहा हो......

(३)

शाम हो गई है। फिर वही दाल है जो सीझना नहीं चाहती। जानती है कि वह सीझने के ही लिये है कि दुनिया उसे खाकर पचा जाये, फिर भी नहीं सीझती। कैसी पथरीली जिद है!

रागिनी फिर उठ गयी। जाकर मुँह धोया। तौलिये से मुँह पोंछ कर माथे में बिन्दी लगायी।

एक बार दरपन में मुख देखा। यह कोई पद्मिनी का सा रूप नहीं। किन्तु फिर भी इसमें वह कुछ तो है ही जो अपने मन के सूनेपन को अपने आप गुदगुदा दे, जिसे देख कर संसार कह सके इसे कुछ चाहिये कुछ चाहिये।

बिपिन के सिर में दर्द है। वह लेटा हुआ है। रागिनी ने कमरे में जाकर धीरे से लालटेन जला दी, सिरहाने बैठकर सिरपर हाथ रखा। कुछ हलका-सा ज्वर था। गर्म शरीर अच्छा लगा। हाथ फिरा कर कहा, 'क्यों बदन गर्म है? कुछ हरारत लगती है?'

'हाँ! आज कुछ ज्यादा होगी। कोई ऐसी बात नहीं। तुम जानती हो आठ घंटे की ड्यूटी, जिसमें सोलह घंटे की डाँट...'

'क्या मतलब है ?' रागिनी ने चौंक कर पूछा।

'मेरे भाई, दो आदमी के आठ और आठ सोलह ही तो हुए ?'

दोनों हँस पड़े। इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। कर भी क्या सकते हैं। क्लर्की छोड़ देगा तो कोई दूसरा पतिंगा शमा पर जलने आ जायेगा। दिल्ली का विराट नगर है। इस छोटे क्वार्टर में कितना अपनापन है ? कुछ ऐसी बात भी नहीं कि हम क्या किसी से कम हैं ?

रागिनी कुछ नहीं बोलती। चुपचाप सिर पर हाथ फिराती रहती है जैसे कोई चाय की चिकनी प्याली है। दूसरी बार लगता है कहीं दाल पर से ढक्कन तो नहीं उतार रही।

मन एक केंद्र है जिससे जगह-जगह के लिये बाण छूटा करते हैं।

मांस का हाथ है, वही मनुष्य देह की तपिश से आकर्षित हो रहा है।

रागिनी दोनों हाथों से उसका मुख अपनी ओर मोड़ कर कहती है, 'तो क्या हम लोग कभी भी सुखी नहीं रहेंगे ?'

सुख ! एक दर्दनाद सपना जिसके अंत में जैसे मनुष्य चिल्ला कर बिस्तरे से उठ कर भागता है।

बिपिन धीरे से हँसा। उसने हल्की-सी मुस्कराहट से कहा, 'पगली ! सुख और किसे कहते हैं ?'

रागिनी के मन पर कोई सांत्वना का घड़ा उड़ेल रहा है।

बिपिन ने कहा—'तुम समझती हो धन ही हमारे सुखों का मोल है ? नहीं रागिनी। प्रेम ही हमारे जीवन की सांत्वना है, एक बड़ा भारी आधार है। यदि मैं इस दुखी संसार में तुमसे

छूट जाँऊ तो तुम समझती हो मैं यह अपमान का जीवन बिता सकूँगा ?'

रागिनीने समझा। मन के किसी भीतरी भाग में प्रश्न हुआ—'तो क्या यह स्नेह किसी घोर घृणा का परिणाम है ?'

बिपिन ने उसकी गोद में सिर रख कर कहा—'रानी ! डूबते को तिनके का सहारा चाहिये, किनारे पर खड़ा होकर शोर मचाने-वाला तो कभी मदद नहीं देगा !'

तो क्या दोनों ही डूब रहे हैं। रागिनी ने उसका हाथ अपनी मुट्ठी में दाब लिया। बिपिन को लगा जैसे बिजली का तार उसके हाथ से जकड़ गया हो।

उसके बाद एक बुखार है। रागिनी ने उसके बालों पर स्नेह से हाथ फेरा जैसे रेशम का कीड़ा अपने मुँह से उगले रेशम में चहलकदमी कर रहा हो।

देर तक वे एक दूसरे का मुख देखते हैं। पीलापन तो है ही कितना असन्तोष भी है। यदि समाज का ढाँचा इसके लिये दोषी है तो देवता के सामने इनकी बलि क्यों हो रही है।

'रागिनी !' बिपिन ने कहा—'कितना अँधियारा छा गया है बाहर ?'

रागिनी ने मुख मोड़ कर कहा—'तुम जो वह ब्लाउज़ का कपड़ा देख आये थे, लाये नहीं ?'

'अच्छा वह जो वह सिखनी पहनती है !'

'हाँ ! क्यों जी यह सिख तो इतनी ही तनखाह में, ऐसी हालत में ही बड़े खुश रहते हैं। इनकी सब क्या बात है ?

बिपिन हँसा, स्नेह से उत्तर दिया—'वे ऊपर के दिखावे के

जो ज्यादा शौकीन होते हैं। वे और ज्यादा सोचते ही कम हैं।'

'तो तुम इतना सोचते क्यों हो ? हम क्या बिना सोचे सुखी हो सकते हैं ?'

बिपिन चुप है। लगता है जैसे दीपक फक करके बुझ जायगा !!!

घड़ी बज उठी है। दाल सीझ चुकी होगी। वह उठी। केवल बैठे रहने ही से तो कल का जीवन नहीं चलेगा। सुबह शाम खाना पकाने के लिये हैं, बाकी समय पचाने के लिये और विकृत मल को निकाल कर अपने को स्वच्छ समझने की प्रतारणा के लिये।

वह उठ खड़ी हुई। द्वार की ओर चली। मुड़ कर देखा, बिपिन करवट बदल रहा था। उसकी पीठ इधर थी। वह विश्रांत था। बीच में दो शब्दों को मिला कर एक करने वाली वह छोटी लकीर अब नहीं बन रही थी। रागिनी ने जाकर देखा—दाल अभी भी सीझ ही रही थी, सीझी नहीं थी......

मनमें आया उठाकर फेंक दे, किन्तु साहस नहीं हुआ। जीवन भी तो इस दाल के ही समान है, उसे फेंक दे उठा कर, किन्तु इतनी सामर्थ्य है कहाँ ! और रात को भी कोयल बोल ही उठती है कभी कभी।

पिसनहारी

भोरके सूनेपन में बुढ़िया खाँसने लगी। उसका नाम किसी समय जमुना था, किन्तु आज समय ने उसे बिलकुल भुला दिया था। अपनी मड़ैया की छान की ओर उसने एक बार धुँधली आँखों से देखा और फिर बल लगा कर उठ बैठी। हवा सनसना रही थी, और उस धुँधले अन्धकार में जब आकाश का एकाकी शुक्र दमक रहा था, चक्की चलने की घरर-घरर गूँज उठी। स्वभाव के अनुसार ही वह गाने लगी और उसका वह भग्न स्वर ऐसे फूट निकला जैसे वह शव के ऊपर रो रही हो; और उसका वह आर्त्तनाद आकाश में गूँज रहा हो।

सारा गाँव उसे जानता है। सब उसे आज 'डोकरी' के नाम से पुकारते हैं। सुहागिनें उसका मुख सुबह उठ कर देखना बुरा मानती हैं। कोई उसे नहीं छेड़ता, क्योंकि वह सबको मनमाने सुनाती है, किसी से नहीं डरती।

जब कभी मैं इस गाँव में आता हूँ तब इस बुढ़िया को देखकर मेरे हृदय में अद्भुत विचार उठने लगते हैं। नानगा ने मुझसे कहा था कि बुढ़िया कभी भीख नहीं लेती; तीन आने रोज कमा

लेती है। एक बार नानगा ने कहा—'क्यों डोकरी, और बूढ़ी हो जायगी तो क्या करेगी ?'

बुढ़िया ने हँसकर कहा—'मर जाऊँगी।'

उस उत्तर की कठोरता को नानगा सह सकने में असमर्थ हो कर लौट आया, और बुढ़िया पीसती और बीच बीच में गाती रही। उसके इतने बच्चे हो चुके हैं कि वह दूरसे अवश्य स्त्री प्रतीत होती है, किन्तु उसमें मनुष्य देह के अतिरिक्त और कुछ भी शेष नहीं है; कभी कभी जब उसका वह भावहीन शुष्क मुख देख लेता हूँ तब हड्डी तक काँप उठती है।

× × ×

जब मुरली, मनोहर और मन्सुखा फौज में भाग गये तब जमुना ने एक कान से सुना, दूसरे कान से निकाल दिया। सचमुच उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा—जैसे आये वैसे ही चले गये। बापू ने सुख नहीं दिया, माँ होकर वह भी उन्हें सुख से नहीं पाल सकी। जेल गये, फौज में गये— कितनी अच्छी है सरकार यह, कुछ न मिले आ जाओ; भूखे तो नहीं मरोगे।

नानगा ने सुना तो तुरन्त आकर कहा—'अरी डोकरी; कुछ सुना ?'

जमुना ने स्वीकार करके सिर हिलाया और कहा—'भगवान सबकी सुनता है भइया, मरना-जीना तो परमात्मा के हाथ है, पर रोटियाँ तो मिल जायँगी।'

नानगा हतबुद्धि-सा निरुत्तर होकर लौट गया। एक बार जमुना को याद आया कि आज यदि इनका बाप होता तो वह भी

कितना सुखी होता ! तीन लड़के तो सहारे लग गये—और उसकी आँखों में अपने आप पानी भर आया।

तीनों चले गये। फिर कभी उनकी कोई खबर तक नहीं आयी—जैसे वे कभी पैदा ही नहीं हुए।

और जमुना फिर भी व्यस्त थी। सर में अनेक जूएँ निकलती हैं, वक्त मिलते ही उन्हें निकाल कर कुचल दिया जाता है। मरे की भगवान को चिन्ता है, आँख से ओझल की ओर देखने की उसे फुर्सत नहीं, क्योंकि अभी उसके सामने पन्द्रह बच्चे पड़े हैं। जमुना ने अपनी गीली आँखें पोंछ लीं और फिर अपने काम में जुट गयी—जैसे उसे कुछ नहीं मालूम। उसे कुछ मत बताओ; क्योंकि वह रोना नहीं चाहती।

(२)

उस रात भयानक गर्मी पड़ रही थी। गाँव में हैजा फैला हुआ था। घर घर से रोने की आवाज आ रही थी। कपड़े का भी अकाल फैला हुआ था।

भोला ने एकाएक अररर कर के जोर की कै की। चन्दा ठठाकर हँस पड़ा। जमुना आटा देने गयी थी। बस वही ग्यारह बैठे थे।

'अरिया खाने को जो रोज रोज मिल जाय......'रामसरूप की पतली आवाज किलक उठी। सहसा उसने भोला को झकझोर कर कहा—'भइया !'

लेकिन रज्जू को कोई मतलब नहीं, बोला—'पेट भर के खाया, पेट भर के...मजा आ गया...'

और भोला चीख कर लेट गया। रामसरूप पेट पकड़ कर चिल्ला उठा—'अरे, मर गया रे......'

और इतने जोर की कै की कि चार-पाँच भाई सिहर गये। और वह वहीं लुढ़क गया।

रज्जू कहता जा रहा था—'अरिया, आयेगा जब कलुआ खेत-में तब देखेगा कि सूअर भी खेत ऐसे नहीं खा सकते......'

बोलते-बोलते उसकी आवाज भर्रा गयी और उसने उठने की कोशिश की, किन्तु उठा नहीं गया......

और इसके बाद वे देर तक के लिए बिलकुल खामोश हो गये।

सड़क पर चलता रिलीफ करने को आया एक वालंटियर रुक गया, सूँघ कर बोला—'बड़ी गंध है।'

उसके साथी ने बत्ती उसकायी और दोनों ने भीतर जाकर देखा। बदबू से चकरा गया। इसी समय जमुना ने प्रवेश किया। घर में दिया देख कर चकरायी। जाकर देखा। उस दहशत से भरे सन्नाटे में एक बड़ी भयानक आवाज उसके गले से निकल गयी।

एक वालंटियर उठाने की गाड़ी लेने चला गया। दिये की धुँधली रोशनी उन लाशों पर खेलने लगी। वालंटियर ने पूछा—'तुम कौन हो?' एकाएक वह चौंक गया। जमुना ने उसकी ओर देख कर कहा—'इनका बाप जब मरा था तब उसके कपड़े उतार कर मैंने इनके लिए कपड़े बनाये थे, लेकिन ये निपूते तो निपट नङ्गे हैं, ऐसा भी नहीं कि मर के भाइयों के लिए कुछ भी छोड़ जाते; सब ले गये, कुछ भी नहीं छोड़ा गया इनसे।' वालंटियर चकरा कर इधर-उधर देखने लगा। जमुना हँस दी। उतार कर

अपनी ओढ़नी से दो को ढँक दिया और कहा—'धोती नहीं उतार सकती बाबू! तुम्हारे तो कपड़े भी इस जोग नहीं कि कफन का काम दे सकें।'

वालंटियर किंकर्तव्यविमूढ़-सा देखता रहा। जमुना क्षण भर को झुकी और एक बार उसने अपने सबसे छोटे बच्चे को गोद में उठा लिया। घूर कर उसे देखती रही—जैसे वह उससे जुदा हो रहा हो। और फिर हताश हो कर शव को छोड़ दिया।

वालंटियर कराह उठा; किन्तु जमुना जलती आँखों को खोले बैठी रही—जैसे पुतली भी थोड़ी देर में बिलकुल सफेद हो जायगी।

(३)

'अम्माँ!' सरजू ने कहा—'मैं, फूल और सोमा शहर चले जायँ?'

जमुना ने आँख उठाकर देखा। आज अन्तिम सेना भी बाहर जाना चाहती थी। सरजू और फूल जुड़वें हैं।

'क्या करोगे वहाँ?' जमुना ने पूछा। सरजू को विस्मय हुआ। आज तक तो अम्माँ ने कभी नहीं पूछा, फिर आज क्या हो गया है उसे? और क्या वह नहीं जानती कि वहाँ पेट तो भर जायगा।

'लड़ाई की नौकरी करेंगे और क्या?' फूल ने टोक कर कहा—'तुझे भी कुछ भेजेंगे।'

जमुना हँस पड़ी। खूब समझती है वह लड़कों के वादे, जो जायँगे तो मुड़कर अपनी छाया तक नहीं देखेंगे। और जो इनका ब्याह कर देती तो यहीं सड़ते, यहीं मरते। भाव धारा सूख गयी, क्योंकि वह किसी का भी ब्याह कर सकने में असमर्थ थी।

मन उच्चाट हो गया। अब के सोमा ने कहा—'और अम्माँ, बल्लू तो तेरे ही पास है ?'

जमुना ने कुछ नहीं कहा। उसके पास कौन है, कौन नहीं है—इसकी उसे चिन्ता नहीं। केवल इतना ही कहा—'जाओ, मन छोटा न करो। अच्छी तरह रह सको। मुझे और कितने दिन जीना है, मेरी चिन्ता न करोगे तो क्या कोई हानि होगी ?'

तीनों ने एक दूसरे की ओर देखा और चरन छूकर बाहर चले गये। जब पगध्वनि शान्त हो गयी, जमुना एक बार खुल कर रो पड़ी—जैसे आज रोने अतिरिक्त उसके पास और कोई काम नहीं। आँसू बार-बार आँखों में उमड़ आते। जाने कितने दिन का उपवास टूट रहा था! एक-एक कर के याद आने लगे वे दिन—वे दिन जो याद में भी विष की भाँति फैल जाते हैं।

घर का सूनापन एक बार जी को कचोट उठा। उसकी बगिया में फूलों की क्या कमी थी। किन्तु एक-एक कर के सब मुरझा गये, सब कुम्हला गये। दृष्टि उठा कर देखा, वही छान थी, वही दीवारें थीं, किन्तु कुछ भी शेष नहीं था। एक पेड़ था, उसमें अनेक-अनेक कोंपलें फूट आयीं, पत्तों से सघन हरियाली नाच उठी, उसकी उसासों से एक बार छाया-सी फैल गयी, किन्तु फिर सब पत्ते एक एक कर गिर गये और केवल एक पत्ता काँपता हुआ लटका रह गया।

जमुना ने सोचा—एक बेचारा बल्लू रह गया है, अकेला। आयु भी तो अधिक नहीं, कुल तेरह बरस की है। उसे अब मैं खूब खिलाऊँगी। जो आता है उसमें से कुछ भी अपने लिए नहीं रखूँगी...

सारी ममता कण्ठ में इकट्ठी हो गयी, गला दबा उठी...

इसी समय नानगा ने द्वार पर खड़े हो कर घबराये हुए कहा—'बल्लू की माँ ! शहर की सड़क पर फौजी लारी के नीचे आ गया। वह मर गया है...'

जमुना जोर से हँस दी—जैसे हवा का एक तेज झोंका आकर दीपक को फक से बुझा देता है। नानगा कहता रहा—'वे लोग बहुत तेज चला रहे थे, उन्हें क्या पड़ी कौन बचे कौन मरे...'

किन्तु जमुना हँस ही रही थी; क्योंकि वह सरकार पर दावा करना नहीं जानती थी।

(४)

आज वह अकेली थी, किन्तु फिर भी जीने की लालसा से पत्थर पर पत्थर रगड़कर सबसे भयानक, सबसे सशक्त आग निकाल रही थी। जीवन के महाभारत में अठारह अक्षौहिणी की भाँति उसके अठारहों लड़के उसे छोड़ चुके थे किन्तु वह नहीं मरी थी—नहीं मरी थी।

उसको देखकर मुझे याद आती है गान्धारी की जो बेटों के रक्त से भीगी पृथ्वी पर भूख लगने पर खड़ी हुई थी और जिसने वहीं रोटी खायी थी। यह जीवन की वह शक्ति है जिसे मृत्यु की, ध्वंस की कोई छलना नहीं मिटा सकती।

मेरे कानों में एक ही स्वर गूँज रहा है। चक्की का पत्थर गरज रहा है—जैसे हिमालय और विन्ध्याचल टकराकर चिल्ला उठे हों......

और मेरे सामने एक विराट् महाशक्ति की भाँति बुढ़िया

खड़ी है—छाये जा रही है, और एक दिन सारे संसार पर छा जायेगी।

गेहूँ के दाने पिसकर आटा हो गये थे; बरफ पिघलकर पानी हो गया था। भविष्य के बड़े-बड़े पत्थरों को चूरकर काल भी इसी तरह वर्तमान बना देता है, जिसे खाकर संसार अपने आपको जीवित कहता है, आपस में लड़ता है, फिर लड़कर समझौते की छलना में बढ़ता भी है और अपने अभिमानों की केंचुली भी उतारता जाता है; किन्तु जमुना यह सब नहीं जानती, वह गेहूँ पीसती रही है और घुन बनकर उसके साथ पिसती भी रही है, क्योंकि आज के समाज में जमीन की फसल और गरीब अमीरों के खाने के लिए हैं, पचाकर छोड़ देने के लिए हैं......

और जमुना पीस रही थी, पीस रही थी......

गूँगे

'शकुन्तला क्या नहीं जानती ?'

'कौन ? शकुन्तला ! कुछ भी नहीं जानती ।'

'क्यों साहब ? क्या नहीं जानती ? ऐसा क्या काम है जो वह नहीं कर सकती ?'

'वह उस गूँगे को नहीं बुला सकती ।'

'अच्छा बुला दिया तो ?'

'बुला दिया !'

बालिका ने एक बार कहने वाली की ओर द्वेष से देखा और चिल्ला उठी—'दूँ दे !'

गूँगे ने नहीं सुना । तमाम स्त्रियाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं । बालिका ने मुँह छिपा लिया ।

× × × ×

जन्म से वज्र बहरा होने के कारण वह गूँगा है । उसने अपने कानों पर हाथ रख कर इशारा किया । सब लोगों को उसमें दिलचस्पी पैदा हो गई, जैसे तोते को राम-राम कहते सुनकर उसके प्रति हृदय में एक आनंद मिश्रित कुतूहल उत्पन्न हो जाता है ।

चमेली ने उँगुलियों से इंगित किया—फिर ?

मुँह के आगे इशारा करके गूंगे ने बताया—भाग गई। कौन ? फिर समझ में आया। जब छोटा ही था तब 'माँ' जो घूँघट काढ़ती थी, छोड़ गई। क्योंकि 'बाप', अर्थात् बड़ी-बड़ी मूछें, मर गया था। और फिर उसे पाला है—किसने ? यह तो समझ में नहीं आया, पर वे लोग मारते बहुत हैं।

करुणा ने सबको घेर लिया। वह बोलने की कितनी जबर्दस्त कोशिश करता है ! लेकिन नतीजा कुछ नहीं, केवल कर्कश काँय-काँय का ढेर। अस्फुट ध्वनियों का वमन, जैसे आदिम मानव अभी भाषा बनाने में जी जान से लड़ रहा हो।

चमेली ने पहली बार अनुभव किया कि यदि गले में काकल तनिक ठीक नहीं हो तो मनुष्य क्या से क्या हो जाता है। कैसी यातना है कि वह अपने हृदय को उगल देना चाहता है किंतु उगल नहीं पाता।

सुशीला ने आगे बढ़कर इशारा किया—मुँह खोल ! और गूँगे ने मुँह खोल दिया। लेकिन उसमें कुछ दिखाई नहीं दिया। पूछा, गले में कौआ है ? गूँगा समझ गया। इशारे से ही बता दिया—किसी ने बचपन में गला साफ करने की कोशिश में काट दिया। और वह ऐसे बोलता है जैसे घायल पशु कराह उठता है, शिकायत करता है जैसे कुत्ता चिल्ला रहा हो और कभी कभी उसके स्वर में ज्वालामुखी के विस्फोट की सी भयानकता थपेड़े मार उठती है। वह जानता है कि वह सुन नहीं सकता। और बता कर मुसकराता है। वह जानता है कि उसकी बोली को कोई नहीं समझता फिर भी बोलता है।

सुशीला ने कहा—इशारे गज़ब के करता है। अक्ल बहुत तेज है।

पूछा—खाता क्या है, कहाँ से मिलता है ?

वह कहानी ऐसी है जिसे सुनकर सब स्तब्ध बैठे हैं। हलवाई के यहाँ रात भर लड्डू बनाये हैं; कढ़ाई माँजी है, नौकरी की है, कपड़े धोये हैं, सब के इशारे हैं, लेकिन—

गूँगे का स्वर चीत्कार में परिणत हो गया। सीने पर हाथ मार कर इशारा किया—हाथ फैला कर कभी नहीं माँगा, भीख नहीं लेता; भुजाओं पर हाथ रख कर इशारा किया—मेहनत का खाता हूँ, और पेट बजाकर दिखाया इसके लिये, इसके लिये......

अनाथाश्रम के बच्चों को देख कर चमेली रोती थी। आज भी उसकी आँखों में पानी आ गया। यह सदा से ही कोमल है! सुशीला से बोली—'इसे नौकर भी तो नहीं रखा जा सकता।'

पर गूँगा उस समय समझ रहा था—वह दूध ले आता है। कच्चा मँगाना हो थन काढ़ने का इशारा कीजिये, औटा हुआ मँगाना हो, हलवाई जैसे एक बर्तन से दूध दूसरे बर्तन में उठा कर डालता है, वैसी बात कहिये। साग मँगाना हो गोल-मोल कीजिये या लम्बी उँगली दिखा कर समझाइये,......और भी...... और भी......

और चमेली ने इशारा किया—हमारे यहाँ रहेगा ?

गूँगे ने स्वीकार तो किया किंतु हाथ से इशारा किया—क्या दोगी ? खाना ?

हाँ चमेली ने सिर हिलाया।

'कुछ पैसे ?'

चार उँगलियाँ दिखा दीं। गूँगे ने सीने पर हाथ मार कर जैसे कहा—तैयार है। चार रुपये!

सुशीला ने कहा—'पछताओगी। भला यह क्या काम करेगा?'

'मुझे तो दया आती है विचारे पर,' चमेली ने उत्तर दिया। न हो बच्चों की तबियत बहलेगी।

× × ×

घर पर बुआ मारती थी, फूफा मारता था, क्योंकि उन्होंने उसे पाला था। वे चाहते थे कि बाजार में पल्लेदारी करे, बारह चौदह आने कमा कर लाये और उन्हें दे दे, बदले में वे उसके सामने बाजरे और चने की रोटियाँ डाल दें। अब गूँगा घर भी नहीं जाता। यहीं काम करता है। बच्चे चिढ़ाते हैं। कभी नाराज नहीं होता। चमेली के पति सीधे साधे आदमी हैं। पल जायेगा बेचारा, किन्तु वे जानते हैं कि मनुष्य की करुणा की भावना उसके भीतर गूँगेपन की प्रतिच्छाया है, जब वह बहुत कुछ करना चाहता है, किंतु कर नहीं पाता। इसी तरह दिन बीत रहे हैं।

चमेली ने पुकारा—गूँगे!

किंतु कोई उत्तर नहीं आया, उठ कर ढूँढ़ा—कुछ पता नहीं लगा।

बसंता ने कहा—'मुझे तो कुछ नहीं मालूम।'

'भाग गया होगा', पति का उदासीन स्वर सुनाई दिया। सच-मुच वह भाग गया था। कुछ भी समझ में नहीं आया। चुपचाप जाकर खाना पकाने लगी। क्यों भाग गया? नाली का कीड़ा! एक छत उठाकर सिर पर रख दी फिर भी मन नहीं भरा। दुनिया

हँसती है, हमारे घर को अब अजायबघर का नाम मिल गया है...किसलिये......

जब बच्चे और वह भी खाकर उठ गये तो चमेली बची रोटियाँ कटोरदान में रखकर उठने लगी। एकाएक द्वार पर कोई छाया हिल उठी। वह गूँगा था। हाथ से इशारा किया—भूखा हूँ।

'काम तो करता नहीं, भिखारी।' फेंक दीं उसकी ओर रोटियाँ। रोष से पीठ मोड़कर खड़ी हो गई। किन्तु गूँगा खड़ा रहा। रोटियाँ छुईं तक नहीं। देर तक दोनों चुप रहे। फिर न जाने क्यों गूँगे ने रोटियाँ उठा लीं और खाने लगा। चमेली ने गिलासों में दूध भर दिया! देखा गूँगा खा चुका है। उठी और हाथ में चिमटा लेकर उसके पास खड़ी हो गई।

'कहाँ गया था?' चमेली ने कठोर स्वर से पूछा।

कोई उत्तर नहीं मिला। अपराधी की भाँति सिर झुक गया। सड़ से एक चिमटा उसकी पीठ पर जड़ दिया। किन्तु गूँगा रोया नहीं। वह अपने अपराध को जानता था। चमेली की आँखों से दो बूँदें जमीन पर टपक गईं। तब गूँगा भी रो दिया।

और फिर यह भी होने लगा कि गूँगा जब चाहे भाग जाता, फिर लौट आता। उसे जगह जगह नौकरी करके भाग जाने की आदत पड़ गई थी। और चमेली सोचती कि उसने उस दिन भीख ली थी या ममता की ठोकर को निस्संकोच स्वीकार कर लिया था।

× × × ×

बसंता ने कस कर गूँगे के चपत जड़ दी। गूँगे का हाथ उठा और न जाने क्यों अपने आप रुक गया। उसकी आँखों में पानी

भर आया और वह रोने लगा। उसका रुदन इतना कर्कश था कि चमेली को चूल्हा छोड़ कर उठ आना पड़ा। गूँगा उसे देख कर इशारों से कुछ समझाने लगा। देर तक चमेली उससे पूछती रही। उसकी समझ में इतना ही आया कि खेलते खेलते बसंता ने उसे मार दिया था।

बसंता ने कहा—'अम्मा! यह मुझे मारना चाहता था।'

'क्यों रे?' चमेली ने गूँगे की ओर देख कर कहा। वह इस समय भी नहीं भूली थी कि गूँगा कुछ सुन नहीं सकता। लेकिन गूँगा भावभंगिमा से समझ गया। उसने चमेली का हाथ पकड़ लिया। एक क्षण को चमेली को लगा जैसे उसी के पुत्र ने आज उसका हाथ पकड़ लिया था। एकाएक घृणा से उसने हाथ छुड़ा लिया। पुत्र के प्रति मंगल कामना ने उसे ऐसा करने को मजबूर कर दिया।

कहीं उसका भी बेटा गूँगा होता तो वह भी ऐसे ही दुःख उठाता। वह कुछ भी नहीं सोच सकी। एक बार फिर गूँगे के प्रति हृदय में ममता भर आई। वह लौट कर चूल्हे पर जा बैठी जिसमें अन्दर आग थी, लेकिन उसी आग से वह सब पक रहा था जिससे सबसे भयानक आग बुझती है—पेट की आग, जिसके कारण आदमी गुलाम हो जाता है। उसे अनुभव हुआ कि गूँगे में बसंता से कहीं अधिक शारीरिक बल था। कभी भी गूँगे की भाँति शक्ति से बसंता ने उसका हाथ नहीं पकड़ा था। लेकिन फिर भी गूँगे ने अपना उठा हाथ बसंता पर नहीं चलाया।

रोटी जल रही थी। झट से पलट दी। वह पक रही थी; इसी से बसंता बसंता है...गूँगा गूँगा है...

चमेली को विस्मय हुआ। गूँगा शायद यह समझता है कि बसंता मालिक का बेटा है, उस पर वह हाथ नहीं चला सकता। मन ही मन थोड़ा विक्षोभ भी हुआ, किन्तु पुत्र की ममता ने इस विषय पर चादर डाल दी। और फिर याद आया उसने उसका हाथ पकड़ा था। शायद इसीलिये कि उसे बसंता को दण्ड देना ही चाहिए, यह उसको अधिकार है...

किन्तु वह तब समझ नहीं सकी, और उसने सुना गूँगा कभी कभी कराह उठता था। चमेली उठ कर बाहर गई। कुछ सोच कर रसोई में लौट आई और रात की बासी रोटी लेकर निकली।

'गूँगे,' उसने पुकारा।

कान के न जाने किस पर्दे में कोई चेतना है कि गूँगा उसकी आवाज को कभी अनसुना नहीं कर सकता; वह आया। उसकी आँखों में पानी भरा था। जैसे उनमें एक शिकायत थी, पक्षपात के प्रति तिरस्कार था। चमेली को लगा कि लड़का बहुत तेज है। बरबस ही उसके होठों पर मुसकान छा गई। कहा—'ले खाले।' और हाथ बढ़ा दिया।

गूँगा इस स्वर की, इस सब की उपेक्षा नहीं कर सकता। वह हँस पड़ा। अगर उसका रोना एक अजीब दर्दनाक आवाज थी तो यह हँसना और कुछ नहीं—एक भयानक गुर्राहट सी चमेली के कानों में बज उठी। उस अमानवीय स्वर को सुन कर वह भीतर ही भीतर काँप उठी। यह उसने क्या किया था? उसने एक पशु पाला था जिसके हृदय में मनुष्यों की सी वेदना थी।

× × × ×

घृणा से विक्षुब्ध होकर चमेली ने कहा—'क्यों रे तूने चोरी की है ?'

गूँगा चुप हो गया। उसने अपना सिर झुका लिया। चमेली एक बार क्रोध से काँप उठी, देर तक उसकी ओर घूरती रही। सोचा—मारने से यह ठीक नहीं हो सकता। अपराध को स्वीकार करा के दण्ड न देना ही शायद कुछ असर करे। और फिर कौन मेरा अपना है। रहना हो तो ठीक से रहे, नहीं तो फिर जाकर सड़क पर कुत्तों की तरह जूठन पर जिंदगी बिताये, दर दर, अपमानित और लांछित...।

आगे बढ़ कर गूँगे का हाथ पकड़ लिया और द्वार की ओर इशारा करके चिल्लाया—निकल जा।

गूँगा जैसे समझा नहीं। बड़ी बड़ी आँखों को फाड़े देखता रहा। कुछ कहने को शायद एक बार होंठ भी खुले किन्तु कोई स्वर नहीं निकला। चमेली वैसी ही कठोर बनी रही। अबके मुँह से भी साथ साथ—'जाओ निकल जाओ। ढंग से काम नहीं करना है तो तुम्हारा यहाँ कोई काम नहीं। नौकर की तरह रहना है रहो, नहीं, बाहर जाओ। यहाँ तुम्हारे नखरे कोई नहीं उठा सकता। किसी को भी इतनी फुर्सत नहीं है। समझे ?'

और फिर चमेली आवेश में आकर चिल्ला उठी—'मक्कार, बदमाश! पहले कहता था भीख नहीं माँगता, और सब से भीख मांगता है। रोज रोज भाग जाता है, पत्तो चाटने की आदत पड़ गयी है। कुत्ते की दुम क्या कभी सीधी होगी ? नहीं। नहीं रखना है हमें, जा, तू इसी वक्त निकल जा...।'

किन्तु वह क्षोभ, वह क्रोध, सब उसके सामने निष्फल हो गये,

जैसे मन्दिर की मूर्ति कोई उत्तर नहीं देती, वैसे ही उसने भी कुछ नहीं कहा। केवल इतना समझ सका कि मालकिन नाराज है और निकल जाने को कह रही है। इसी पर उसे अचरज और अविश्वास हो रहा है।

चमेली अपने आप लज्जित हो गई। कैसी मूर्खा है वह बहरे से जाने क्या क्या कह रही थी! वह क्या कुछ सुनता है?

हाथ पकड़ कर जोर से एक झटका दिया और उसे दरवाजे के बाहर धकेल कर निकाल दिया। गूँगा धीरे धीरे चला गया। चमेली देखती रही।

करीब घण्टे भर बाद शकुन्तला और बसंता दोनों चिल्ला उठे—'अम्मा! अम्मा!!'

'क्या है?' चमेली ने ऊपर ही से पूछा।

'गूँगा...' बसंता ने कहा। किन्तु कहने के पहले ही नीचे उतर कर देखा—गूँगा खून से भींग रहा था। उसका सिर फट गया था। वह सड़क के लड़कों से पिट कर आया था, क्योंकि गूँगा होने के नाते वह उनसे दबना नहीं चाहता था...दरवाजे की दहलीज पर सिर रख वह कुत्ते की तरह चिल्ला रहा था...।

और चमेली चुपचाप देखती रही, देखती रही कि इस मूक अवसाद में युगों का हाहाकार भर कर गूँज रहा है।

और ये गूँगे...अनेक अनेक हो संसार में भिन्न भिन्न रूपों में छा गये हैं, जो कहना चाहते हैं पर कह नहीं पाते। जिनके हृदय की प्रतिहिंसा न्याय और अन्याय को परख कर भी अत्याचारी को चुनौती नहीं दे सकती, क्योंकि बोलने के लिए स्वर होकर भी—स्वर में अर्थ नहीं है, क्योंकि वे असमर्थ हैं।

और चमेली सोचती है, आज दिन ऐसा कौन है जो गूँगा नहीं है। किसका हृदय समाज, राष्ट्र, धर्म और व्यक्ति के प्रति विद्वेष से, घृणा से नहीं छटपटाता, किन्तु फिर भी कृत्रिम सुख की छलना अपने जालों में उसे नहीं फाँस देती—क्योंकि वह स्नेह चाहता है, समानता चाहता है।

अवसाद का छल

अवसाद की

इन रेखाओं का कहीं अन्त नहीं है। वह उन्हें सीधा करना चाहती है किन्तु बालक के हाथ में उलझे हुए डोरे की लच्छी कभी नहीं सुलझ सकती, कभी उसमें वह स्वच्छन्दता नहीं आ सकती जो दो फटे टुकड़ ड़ दे, एक कर दे, क्योंकि जो दूसरों में छेद करती है उसके छेद में घुस सकना सरल काम नहीं है।

आज उस सब की याद आती है, क्योंकि जीवन का यह क्षीण सम्बल जो वेदना का मूल स्तम्भ है वही मानव की सत्ता निभाने का एकमात्र आधार है, जैसे यह जो चित्र-विचित्रों से सज्जित वितान है यह वायु में और किसी प्रकार नहीं टिक सकता।

रात आ गयी है और पुष्पा अपनी मादकता की भस्म को अपने उन्माद में छिपाये आकाश के असंख्य तारों को देखती है और फिर आँखों को मूँद लेती है। एक नहीं, अनेक अनेक ताराओं का ब्रह्माण्ड सा उनमें घूमने लगता है जैसे इतने ग्रह,

उपग्रह, नक्षत्रों के रहते हुए भी वास्तव में वह एक व्याप्त विस्तृत-शून्य है जिसे कोई भी नहीं भर सकता।

पुष्पा सोचती है। वेदना का यह उत्ताप व्यक्ति की शक्ति है या निर्बलता, किन्तु कोई उत्तर नहीं मिलता। क्योंकि चन्द्र-मोहन बलिदान को सत्ता से अधिक महत्व देकर भी अपने आपको कभी कभी देश का द्रोही कहने लगता है। आजकल दोनों कलकत्ते में हैं। जब वह बी० ए० करके यहाँ शिक्षक के रूप में आयी थी, उसके बाद ही एक दिन उसे पत्र मिला कि चन्द्रमोहन भी कलकत्ते के दमदम हवाई अड्डे में पाइलट बनकर आ गया है और शीघ्र ही उससे मिलेगा। उस दिन जीवन की अनेक अनेक स्मृतियाँ पंगुता की अभिव्यञ्जना सी उसके सामने कराह उठीं। वह अभी तक उसे भूला नहीं था। वह उस रात सो नहीं सकी। याद आने लगी वह कालेज की भूली मादकता की छलना जब आलिंगन के अतिरिक्त संसार में कुछ मोटी मोटी किताबें थीं, चहल पहल थी, और आज ?

(२)

पुष्पा आबादी के सघन जाल में से निकली। जनरव में से निकल कर जैसे साँप बिल में घुस जाता है उसने घर पहुंच कर शान्ति की साँस ली। घर था एक दो कमरों का डेरा, ऊपर, नीचे, दाँये बाँये, अनेकों से घिरा। यहाँ नहीं है देश की सी शान्ति, यहाँ वह घिरी है, परदेशी बङ्गालियों के बीच में, जो उसे नहीं चाहते, जिन्हें वह नहीं चाहती।

आकर स्टोव पर चाय चढ़ायी। कमरा निर्घोष से काँप उठा। निराधार सा यह कोलाहल अपने मौन के प्रतिकार से स्वयं ही

काँप उठा। वह बैठकर देखने लगी। लौ के टकराने से आवाज होती है, यह आवाज ऐसी है जैसे पृथ्वी के टकराने स वायुमण्डल में होती होगी जिसे हम नहीं सुन पाते क्योंकि उस कोलाहल की महानता को हमारा छोटापन कभी भी नहीं जान सकता, नहीं समझ सकता।

उसी समय द्वार पर किसी की पगध्वनि हुई। भारी भारी बूटों की दिल-दहलाती आवाज, आवाज जिसमें कुचल देने की अदम्य क्षमता है, जो अपनी शक्ति की प्रतारणा को हुंकारती सी फैला देती है।

कमरे में जो व्यक्ति घुसा वह और कोई नहीं स्वयं चन्द्र-मोहन था। पुष्पा से अच्छा रङ्ग था उसका, पुष्पा से अधिक अच्छा खाने पीने से, कठोर होकर भी जो अधिक साफ और चिकना था, जिसमें भूले यौवन में अल्हड़ बने रहने से उससे कहीं अधिक ताजगी थी, जिसके कपड़ों में कलफ था, एक सफाई थी और पुष्पा अपनी खद्दर की साड़ी में पहली बार सङ्कोच का अनुभव करती स्वागत के लिए उठकर खड़ी हो गयी। चद्रमोहन की बड़ी बड़ी निर्मल आँखें उसे देखकर रस से भर गयीं और उसने स्नेह से उसके दोनों हाथ पकड़ लिये, कुशल पूछा और कन्धों पर हाथ रख कर उसे पलङ्ग पर बिठाकर स्वयं खड़ा खड़ा स्टोव को पम्प करने लगा और बातें करते हुए चाय बनाने लगा। पुष्पा उस व्यक्ति के बारे में कुछ भी नहीं समझ पायी। जब चन्द्रमोहन कालेज में था तब वह कुरता धोती पहनता था, तब वह चुराती आँखों से पुष्पा की ओर देखता था, तब पुष्पा उसे अधि-कार से देखती थी और आज वह सब कुछ नहीं था। आज जैसे

गरीब के घर राजा आया था जिसके सबल यौवन ने पुष्पा को वाक्यहीन कर दिया, शब्द मन ही मन, ऐसे चक्कर लगाने लगे जैसे शान्त पानी में कङ्कड़ डाल देने से पानी में गोल गोल रेखाओं का प्रसार होता है, जो कुछ नहीं कहतीं, केवल किनारों से निस्तब्धता से टकरा जाती हैं और चील की तरह हिल कर स्थिर हो जाती हैं।

एक प्याला बढ़ाकर दूसरा प्याला चन्द्रमोहन ने हाथ में ले लिया और स्टूल पर ही बैठ गया। उसकी आँखों में एक नया बचपन था जो पहले पुष्पा ने कभी नहीं देखा था। वह अपनी वर्दी में जँचता था। कैसे चौड़े कंधे थे, कितनी सुडौल ग्रीवा थी, कंधे पर उसके अधिकार की पट्टियाँ थीं और पास में ही उसका ऊनी छज्जेदार टोप था जिसपर आगे 'क्राउन' था।

पुष्पा पढ़ी लिखी है। अचानक ही उसे याद आ गया, ऐसे ही एक दिन आजकल के बादशाह के बाप से वृद्ध तपस्वी गांधी मिला था। हवा थम गयी। तूफान रुक गया। पुष्पा चैतन्य हो गयी।

बातें करते करते घंटाभर बीत गया। वह बर्मा भी गया था और वहींसे लौटकर आया है। ऐसी ऐसी बातें कहता है जो पत्रों में नहीं छप सकतीं। देर तक वह उन्हें सुनती रही। आँखों के सामने चित्र खेलते रहे। कीचड़ में भारी बूट छपछप करते हैं, एक झनझनाहट से कानों पर से गोलियाँ निकल जाती हैं। मशीनगन से खटखट करके जब आग निकलने लगती है, तब जुन्न से हवाई जहाज चक्कर मारकर आकाश में उठ जाता है और फिर भयानक बम गिरते हैं, भूमि से धुआँ उठता है, धूल उठती है बसे बसाये घर उजड़ जाते हैं। इस बरबादीके पीछे न्याय भी है, स्वार्थ भी

है, चन्द्रमोहन तो न्याय के समय मनुष्य नहीं है, स्वार्थ के समय लड़ाई का एक औजार या हथियार भी नहीं ।

'यूरोप की लड़ाई में यह बात नहीं'—चन्द्रमोहन ने कहा—'वहाँ न्याय न्याय है, अन्याय अन्याय, और लड़ाई की नौकरी कोई नौकरी है ? कल सब निकाले जायेंगे तब मैं तो तुम्हारे पास आ जाऊँगा । खिला सकोगी ?'

पुष्पा के हृदय में जो द्रोह था, वह शान्त हो गया । वह उनके साथ कदम मिलाकर चलता है जो इतिहास बदलते हैं जो मरने के आगे जीवन की सतह को पारे की तरह चढ़ाकर बरीते हैं, जिनकी हलचल इतिहास की करवट है, जिनका व्यक्ति संगठित समूह है, जिनकी शक्ति रक्षा भी है और भय भी, किन्तु चन्द्रमोहन वास्तव में भूला हुआ है । वह अब भी उसी प्रकार उसपर विश्वास करता है । किन्तु अब वह हवा से नहीं लड़ता, रोटी की बात करता है । संघर्ष को वह जानता है ।

चन्द्रमोहन ने फिर कहा—'पुष्पा ! तुम बहुत थक गई हो । सच, बहुत काम करना पड़ता है ?'

पुष्पा हँसी । उसके दाँत बहुत सुन्दर हैं तभी उसमें कुछ आकर्षण है । उसने उत्तर नहीं दिया बल्कि चन्द्रमोहन के हाथ की किताब लेकर उसे खोला और देखने लगी । एक पत्रिका थी जिसका नाम था—'मैन ओन्ली' (केवल पुरुष) ।

चन्द्रमोहन ने हँस कर कहा—'यह तुम्हारे काम की चीज नहीं, सब फौजी है, तुम रहने दो, उसे अश्लील कहोगी' । उसने वापस लेने को हाथ बढ़ा दिया ।

'तुम यह सब क्यों पढ़ते हो ?'—पुष्पा ने स्नेह से कहा—'पहिले तो इतनी चञ्चलता नहीं थी ?'

'पहले पानी पीता था देवीजी, अब शराब पीता हूँ समझीं ? और एक बात कहूँ बुरा तो न मानोगी ? तुम पर मेरा विश्वास है, कह दूँ। उलटा अर्थ न लगा लेना।'—चन्द्रमोहन ने तनिक झिझकते हुए कहा।

पुष्पा हँस दी। उसने कहा—'मैंने कभी तुम्हारी बात का बुरा माना है ? तुम लोग फौजी हो। तुम लोगों को हम लोग समझ नहीं पाते। किन्तु तुम मेरे सामने तो मनुष्य हो। और फौजियों को देख कर उपेक्षा से सदा कुतूहल होता है।'

चन्द्रमोहन ने कहा—'बात यह है कि ये चीजें स्त्रियों के लिये नहीं है। लेकिन बहुत सी लड़कियाँ पढ़ती भी हैं, तो वे केवल हम लोगों के मनोरंजन......'

अकचका कर रुक गया। पुष्पा की भौं चढ़ी हुई थी।

'बुरा मान गयी ?'—चन्द्रमोहन ने भय से लड़खड़ा कर पूछा।

पुष्पा उसे घूरती रही। फिर देख कर आँखें बन्द कर लीं और पूछा—'लड़ाई के बाद मेरे पास आ सकोगे ?'

'और नहीं तो करूँगा ही क्या ?'—चन्द्रमोहन ने पूछा—'क्षमा नहीं करोगी ? गुलाम की नागरिकता एक खाली गिलास है, उसमें धन और बल का छल बहुत तेज नशा होता है। अमेरिकन और अंगरेजों की स्त्रियों की भूख अधिक होती है। उन्होंने सिखाया है।'

'तो तुम क्यों सीख गए ?'—पुष्पा ने चोट की—'तुम्हें स्त्रियों का मान करना नहीं आता ?'

'किंतु वे स्त्रियाँ भी ऐसा मान नहीं चाहतीं।'—चन्द्रमोहन ने बात काट कर कहा।

'जानते हो ?'—पुष्पा ने कहा—'वह सब कुछ मेरा था। तुम खाकी में हो, मैं खद्दर में हूँ। किन्तु और तो कुछ नहीं बदला ? फिर तुम जैसे मुझे भूल गये हो, यदि मैं भी तुम्हें भूल जाती तो ?'

'तुम्हारा अधिकार है पुष्पा। इसमें बिगड़ता ही क्या है ? क्षण भर यदि अपरिचित हो कर भी हम सुखी नहीं रह सकते...'

बात काटकर पुष्पा ने कहा—'हमारे भारत में प्रतीक्षा की अथाह वेदना है, हम शीघ्र ही बादल की भाँति झरते नहीं, सागर की तरह भीतर भी, बाहर भी मँडराते हैं, यह जहाज जो हमारे सीने पर चलते हैं, सब कर के भी हम पर आश्रित हैं, अभी यह हमें समाप्त नहीं कर सके, तिनके हैं, तिनके। तुम कहोगे—'मैं थर्मामीटर का चढ़ा हुआ पारा हूँ, तभी तुम बत्ती को तेजी से जला रहे हो, लेकिन एक बात कहूँ ?'

चन्द्रमोहन ने स्वीकार किया।

पुष्पा ने कहा—'जब साहस न रहे तो मेरे पास आना। यह उबा देने वाला सन्नाटा भी एक कोलाहल की शक्ति है। यह अपमानित शक्ति, यह दुःखों का सागर, भूखे, नंगे'......वह काँप उठी—'आना, जब बुझ चुको मैं तुम्हें फिर जला दूँगी।'

चन्द्रमोहन उसके पास बैठ गया।

'मेरे पास शब्द हैं, शक्ति नहीं'—चन्द्रमोहन ने कहा।

'मेरे पास शक्ति है, शब्द नहीं'—पुष्पा ने कहा।

चन्द्रमोहन ने उसके बालों की लटों को छुआ। उनमें गन्ध न थी। फिर भी उसने उसे देखा और निस्संकोच होकर उसके गाल को चूम लिया।

पुष्पा लाज से मुस्कराई। कहा—'अनाड़ी। बरसों हो गये तमीज न आई। अब यह बचपन के दिन हैं? यह तो सब कालेज में बीत गये।'

किन्तु वह प्रसन्न थी। सामने लगे शीशे में उसने देखा था, चन्द्रमोहन गोरा था, वह साँवली थी। वह सुन्दर था, वह साधारण थी। वह स्वस्थ था स्वच्छ था; वह खरदरी थी, चिकनाहट का नाम नहीं था। एक सैनिक ने प्यार किया था। सैनिक!

उसने कहा—'सैनिक! भूलोगे तो नहीं?'

'नहीं'—चन्द्रमोहन ने छलहीन उत्तर दिया।

चन्द्रमोहन चला गया।

(३)

चन्द्रमोहन फिर से बर्मा चला गया और मारा गया। मारे जाने की बात की खोज एक दो की नहीं देशों की बात है, राष्ट्रों और स्वार्थों की मुठभेड़ है। प्रत्येक सैनिक की मृत्यु और जीवन की कहानी युद्ध का इतिहास है। सिद्धांतों का संघर्ष होता है, किन्तु पुष्पा के लिये वह सब कुछ नहीं। देश, विदेश, यूरोप, अमेरिका, शक्ति, दासता, सेना, नागरिक जीवन सब कुछ पर मेधावी एक विराट उपन्यास लिख सकता है, जैसे टाल्सटाय ने सेबेस्टोपोल के युद्ध पर लिखा था, जिसे वह नहीं लिख सकती,

क्योंकि सत्य केवल कल्पना ही है, देखा उसने नहीं, वह अनुभव करती है......

चन्द्रमोहन मर गया है। उसे राष्ट्रों और साम्राज्यों की याद नहीं आती। उसे याद आती है उसकी जो सैनिक नहीं था मनुष्य था, जिसनें इतनी सरलता से बच्चों की तरह उसे चूम लिया था।

वह देखती है, कभी रोती है, हँसती है, कभी सोचती है, किन्तु सन्नाटा जीवन का अंधकार है, लोहे की मोटी चादर है, उसके नीचे हवा नहीं है, किन्तु दीपक नहीं बुझा है, लौ अब भी जल रही है, दीपक में तेल नहीं, जीवन और यौवन का रस है, रक्त है......

डंगर

बोधासिंह ने गर्व से अपने नये बैलों की ओर देखा और मुड़कर कहा—'हरिया की माँ ! जिन्दगी का फल मिल गया। सच, मालूम होता है, परमात्मा ने हमारी सुन ली। कितने दिनों की साध थी न ?' और रुक कर कहा धीरे धीरे—'एक दिन वह जोड़ी लूँगा कि सारा गाँव अचरज करेगा, और आज वह दिन आया है, जिसका इतने दिनों से इन्तजार था।'

लक्ष्मी ने अपनी धुँधली आँखों से देखा और अचानक ही उसके दोनों नयन भर आये। देखती रही, देखती रही, जैसे मन की उस अतृप्त जगह पर किसी ने जोर से डंक मार दिया हो कि वह पल भर को इतनी मुमूर्षु हो गयी कि उत्तर देना भी असंभव हो गया।

बोधा अब वृद्ध हो गया था। अब जो लड़ाई के दिनों में नाज महँगा होने से दो पैसा हाथ लगा है, उसी से घर की शोभा बढ़ी है। लक्ष्मी ने लम्बी साँस लेकर आँखों को पोंछते हुए कहा—'परमात्मा जोड़ी को सदा ऐसा ही फला फूला रखे।' कहते कहते स्वर काँप गया। हरिया और तेजा का चित्र आँखों

के सामने बरबस घूम गया। दोनों ऐसे ही पट्ठे थे। शेर के से बच्चे। अन्तिम चित्र याद था दोनों का। खाकी वर्दी में कैसे सिर पर साफा रख कर जब कन्धों पर बन्दूकें रखी थीं, तब मन करता था कि दोनों को कलेजे में छिपा लिया जाये। गाँव की जवान औरतों की आँखों में एक हिर्स सी खेल उठी थी। और बोधासिंह का कठोर हृदय भी पुरुषवक्ष से एक बार विचलित हो उठा। वह भी जवानी में फौज में था, उसका बाप भी अंगरेजों की फौज में काम करता था, सिपाही का बेटा सिपाही था, कि उसका बाप, जब अंगरेजों का राज न था, सिक्खों की फौज में था, बल्कि उसका खांडा तो सरकार बहादुर पर चला था। उसके बाद अंगरेज मालिक हो गये तब से उन्हीं का नमक खाया है, पीढ़ी-दरपीढ़ी खाया है, और सिपांही ने सदा नमक से वफादारी की है। वह और कुछ नहीं जानता, वह पढ़े-लिखे की तरह कायर नहीं होता कि लड़ने-मारने की जगह बहस करे।

बोधासिंह चुपचाप सोचता रहा। जब वह जवान था तब उसके बाप ने भी उसे फौज में जाने से कभी नहीं रोका। उसका यौवन भी चट्टान की तरह उठा था और आज बरगद की तरह विशालकाय उसने अपनी जटाओं से पृथ्वी पर फिर से हाथ टेक दिये थे और ऐसी छाया हो रही थी जिसमें लक्ष्मी थी, हरिया और तेजा थे और वैभव और समृद्धि की निशानी यवेरी।

(२)

पानी पड़ चुका था। आसमान में मुलायम बादल फरफरा रहे थे। मंगलसिंह ने खेत में हल चलाते-चलाते कहा—'दादा! जोड़ी तो गजब कर रही है।'

बोधासिंह ने दृष्टि उठाकर देखा। अभी तक किसी चिन्ता में उनका ध्यान केन्द्रित हो गया था। उन्होंने दृष्टि धीरे धीरे ऐसे उठायी और अन्त में उनकी आँखें ऐसे फैल गयीं जैसे भरे तालाब में किसीने कंकड़ डालकर उसमें हलचल मचा दी हो।

सामने बूटासिंह उनके बैलों को चला रहा था। वह बूढ़े हो गये थे। गरीब है बूटासिंह। अच्छा है, दोनों का काम चल जाता है।

बोधासिंह ने कहा—'मंगल बेटा! नजर मत लगा देना, समझे?'

और वे हँस पड़े। मंगलसिंह ने कहा—'तुम्हारी तो हर जोड़ी कमाल करती है दादा। परमात्मा करे जो हो जोड़ी ही हो। अब तो वह दिन आये कि बहुओं की भी जोड़ी लाओ। मैं तो दुआ करता हूँ।'

बोधासिंह ने करुण आँखों से उसे देख कर कहा—'भैया! यह भी क्या अपने हाथ की बात है? वह चाहेगा तो ऐसा भी होगा।'

टोककर मंगलसिंह ने कहा, 'ऐसी बात कहते हो, कुछ कह नहीं सकता। तुम तो बाप हो, तुमसे ज्यादा उनका अपना कौन है, मगर बात ऐसी न कहा करो। फले-फूलेगी सदा यह जोड़ी।' फिर दृष्टि फिरा कर कहा—'कैसी सुतान है। दादा सींग कैसे छोटे छोटे हैं, तुम तो हाथी के बच्चे खरीद लाये। कल बीरासिंह कहता था कि अब तो बोधासिंह के घर शेर बँधता है। मगर इस कान से सुन कर उस कान से निकाल दो। यह सब जलन की बातें हैं। इन पर ध्यान देना ठीक नहीं है।'

मंगलसिंह फिर अपने काम में लग गया। बोधासिंह देखते रहे। बैल चल रहे थे। ऊँचे पुट्ठे, जैसे भारी-हलका भार उनके लिए कुछ भी न था, वह उसे ऐसे चला रहा था जैसे बच्चे लकड़ी की छोटी गाड़ी को खींचे लिये जाते हैं। जमीन में फल भीतर तक घुसता चला जाता था और उन्होंने सोचा, कल इसी धरती को बोकर वे कमाल की फसल हासिल करेंगे। तब जोड़ी के लिए घी का भी इन्तजाम होगा। हफ्ते में एक आध बार ऐसा कौन खर्चा बैठेगा ? घर की ही तो गाय है। उनका मन प्रसन्नता से पुलक उठा। इस जोड़ी को वह कभी नहीं बेचेंगे। बूढ़ी हो जायेगी तब भी चारा देंगे। ऐसा कौन बहुत खायेंगे। आधा ही तो रह जायेगा पेट ! फिर वे और डंगर लेंगे। और इन्हीं डंगरों को दिखाकर बहुतेरे डंगर उन्हें मिल जायेंगे और उनकी फसल कभी बौनी नहीं रहेगी......।

एकाएक उनका ध्यान टूट गया। लक्ष्मी ने पल्ला सिर पर सरकाते हुए गद्गद् स्वर से कहा—'चिट्ठी आयी है मेरे लाल की।'

बोधासिंह ने लपक कर उसे थाम लिया और गाँव के मास्टर साहब के घर की ओर चल पड़े। लक्ष्मी उन्हें तब तक देखती रही, जब तक पेड़ों ने उन्हें बिलकुल ही छिपा न लिया। उसके हृदय में लहरों का सा उद्वेग उत्सुकता के भँवर डाल रहा था।

(३)

लक्ष्मी ने हर्ष से आँखें उठायीं और कहा—'खत आया है तो बताते क्यों नहीं क्या लिखा है मेरे हरिया ने ?'

बोधासिंह गर्व से पंजे पर बैठ कर बोले—'राजी खुशी है।'

'दोनों ?' लक्ष्मी ने आतुर स्वर से पूछा।

'दो ही तो थे हरिया की माँ! तीसरा कौन है मुझे तो नहीं मालूम।' और वे ठठाकर हँस पड़े। लक्ष्मी झेंप गयीं। मान करती ही बोली—'चलो रहने भी दो। बुढ़ापे में भी तुम्हें मसखरी करने की आदत नहीं छूटी।' फिर बात बदलकर कहा—'तो लिखा क्या है? मास्टर साहब ने क्या पढ़ के सुनाया तुम्हें?'

'अरे,' बोधासिंह ने कहा—'मास्टर की न पूछो लक्ष्मी। बड़ी तारीफें करता था, दोनों की। कहता था पढ़ने में तो कभी जी नहीं लगा उनका, न सही, उन्हें कौन मास्टरी करनी थी। मगर बहादुर का बेटा बहादुर ही निकला।' कहते कहते बोधासिंह का सीना अपने आप फूल गया। लक्ष्मी तृप्त सी सुनती रही। बोधासिंह कहते रहे—'उन्हें नयी वर्दी मिली है। खाना भी अच्छा मिलता है। सुनते हैं वेतन भी बढ़ने की बातचीत हो रही है। बड़े खुशी हैं वहाँ। साहब तो इतना खुश है कि किसी और से क्या होगा।'

लक्ष्मी के मुँह से एक आह निकल गयी। आजतक उसके आस पास जितने भी पुरुष रहे थे वे सब फौजी थे। घर में लड़के के जन्म का मतलब ही फौज का जन्म था। बाप, भाई, मामा, पति और लड़के भी। फौज में नहीं जाते तो पेट नहीं भरता। मरद का काम तो लड़ना है। जो लड़ने से डरता है वह चूड़ियाँ पहनने के योग्य है। ऐसी और कौन नौकरी है जिसमें पिंसन मिले? बोधासिंह ने फिर कहा—'लिखा है यहाँ दंगे हो रहे हैं। जाने किस जगह। तो वहाँ ही उनकी फौज भेज दी गयी है उसे दबाने। उनका साहब उनकी बहादुरी देखकर बहुत ही खुश हुआ है। हरिया का तो, मास्टर कहते थे, ओहदा भी बढ़ जायेगा।'

लक्ष्मी ने टोककर कहा—'किसको मारा है? उन्थे हिन्दुस्तान के लोगों को?'

'ओ हो।' बोधासिंह ने समझा कर कहा—'अङ्गरेज की सरकार है। सरकार का नमक खाते हैं, वही मालिक है। जो अंगरेज का दुश्मन है वह उसकी फौज का दुश्मन है। हरिया की माँ! फौज में कुछ नहीं देखा जाता। नमक देखा जाता है। जिसने नमक से दगा की वह आदमी आदमी नहीं है। मर्द का क्या, अपने धर्म को बचाये रखे और उस पत्तल में कभी छेद न करे जिसमें वह खाना खाता हो। सिपाही क्या जाने दुनिया की चालाकियाँ? वह तो मरना जानता है, मारना जानता है, जिसका सिर हथेली पर रहता है वह कभी औरतों की तरह नहीं घबड़ाता।'

लक्ष्मी दमक कर बोल उठी—'तो मैंने क्या कह दिया ऐसा? अपने बच्चे की भी याद न आयेगी, ऐसा पत्थर नहीं है मेरा दिल।'

इस व्यथा को उन्होंने भी समझा। कहा—'तुम तो हरिया की माँ, सब समझती हो। राजा रणजीतसिंह के जमाने में एक सिपाही था......।'

और देर तक वे उस सिपाही की कर्त्तव्यशीलता की कहानी सुनाते रहे, लक्ष्मी चुपचाप सुनती रही, सुनती रही...।

इसी तरह दिनपर दिन बीत गये। जोड़ी फल फूल रही थी। बोधसिंह के हृदय में एक अनबूझ सी तृप्ति छायी रही। लक्ष्मी कभी कभी न जाने किस आवेश में सोच बैठती कि निहत्थों पर गोली चलाना क्या ठीक है? यह लोग भी मुलुक के लिए लड़ते हैं। लेकिन यह सब कुहरा दूर हो जाता जब बोधसिंह कहते हैं—'सिपाही फौज में अपना नहीं, मालिक का है समझीं? तभी तो

डरपोंक लोग फौजी को बकरा कहते हैं बकरा !' और उनके अट्टहास की प्रतिध्वनि में लक्ष्मी अपने आप सिहर उठती, फिर ठीक हो जाती ।

एकाएक कोई भयानक दर्दनाक आवाज गूँज उठी । बोधासिंह चिल्ला उठे—'कौन है बाहर ?'

बूटासिंह का स्वर सुनायी दिया—'दादा, बैल को न जाने क्या हो'...वे सुन नहीं सके, उठकर बाहर चले गये ।

(४)

रात आधी से ज्यादा बीत गयी थी । बोधासिंह चुपचाप खड़े थे । उनकी आंखों में एक भी आँसू नहीं था । हृदय में कसकन हो रही थी । उफ़ कैसी दगाबाजी है ! इसके लिए मैंने क्या नहीं किया ? सर्दी से बचाने के लिए टाट सिलवाये । खली और भूसी तो गरीबों के डङ्गर खाते हैं; मैंने इसके लिए घी तक ला ला कर रखा । और इतना रुपया खर्च करवा कर क्या हुआ ?

वह एक बारगी विक्षोभ से सिहर उठे । लक्ष्मी भीतर जमीन-पर बैठी आकाश की ओर देख रही थी । उसका हृदय जैसे बिलकुल सूना हो गया था । न जाने कौन सा तारा कहाँ से टिमटिमा रहा था, यह सब वह स्वयं नहीं समझ पायी ।

एक बैल की अचानक मौत से उसके दिल में न जाने कैसा कैसा होने लगा था । उसने देखा था कि दूसरा बैल चुप खड़ा था जैसे मृत्यु की वेदना ने उसे स्तब्ध कर दिया हो । और उसकी बड़ी बड़ी काली आँखों के कोनों में गँदला पानी उछल आया था और लीक बना कर बह गया था । लक्ष्मी को कभी इतनी वेदना नहीं लगी । दुःख अवश्य हुआ कि इतना रुपया उस पर व्यर्थ बरबाद हो

गया। बैलों का क्या है, बैल तो पच्चीस मिल जायँगे! और लक्ष्मी चुपचाप बैठी रही।

बोधासिंह खड़े खड़े सिहर उठे। कैसी दगा की है इसने! बिना कहे सुने मर गया। इसके रहते हुए गाँव भर कहता था कि बोधासिंह के पास डंगर नहीं है एक फौज है...।

रात की अलसाहट झीनी होकर छितराने लगी; क्योंकि सफेदी आसमान में चादर बिछाने लगी थी। ठंडी हवा का झोंका उनके शरीर को सिहरा गया। वे भीतर लौट आये।

'रात सारी जागते ही बीत गयी, हरिया की माँ,' 'मंजे' पर बैठते हुए बोधासिंह ने कहा।

लक्ष्मी उठ गयी। हुक्का पास लाकर रख दिया और वहीं बैठ गयी जमीन पर। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा। लक्ष्मी ने ही कहा—'तुम तो रात भर नहीं सोये। पलक तक नहीं लगी?'

'ओह!' बोधासिंह ने कहा—'लक्ष्मी! सात सौ की चोट बैठी है। उधर लड़के कमा कर भेज रहे थे, इधर अगर यह बना रहता तो घर ऐसा भर जाता कि सारा गाँव चकाचौंध हो जाता। मगर किस्मत की बात है। यह तो बात ही ऐसी है जिसमें किसी का चारा ही क्या है?'

बात अधूरी रह गयी। बाहर से किसी ने पुकारा, 'हरिया की माँ!'

लक्ष्मी उठ कर बाहर गयी। देखा डाकिया है।

'कल शाम को आ गयी थी चिट्ठी, हरिया की माँ, मगर क्या बताऊँ घर वाली बीमार है न इसीसे अब तो आया हूँ।'

लक्ष्मी ने लेकर देखा वही बड़ा लिफाफा था। मन में जाने

कैसा कैसा होने लगा। एकाएक हवाखोरी को जाते मास्टर साहब पर नजर पड़ी। डाकिये से कहा—'जरा मास्टर साहब को तो बुला।'

डाकिया चिल्ला उठा—'मास्टर साहब! ऐ जी मास्टर साहेब, ऐ जरा इत्थे, ये खत तो पढ़ते जाना जी। बड़ी मेहरबानी होगी।'

लक्ष्मी ने बूढ़े मास्टर के हाथ में पत्र दे दिया। बोधासिंह भी बाहर ही आ गये थे।

वृद्ध मास्टर ने लिफाफा खोला। डाकिया गद्गद सा बोल उठा—'भइया आयेंगे। हरिया की माँ, अबके तो पगड़ी लूँगा, तुम्हारी कसम...'

लक्ष्मी ने हँस कर कहा—'अच्छा सुनने तो दे।'

मास्टर साहब ने पढ़ा—कमाण्डाण्ट।...रेजीमेण्ट। नम्बर...। सूचित किया जाता है हरखसिंह सिपाही, वल्द......मौजा...... गाँव......की बहादुरी से कल एक पूरा गाँव हमने जीत लिया। उसकी संगीन दुश्मन के बदन में ऐसे घुसती थी जैसे जमीन में हल। उसका छोटा भाई अच्छी तरह है। हरखसिंह सरकार के बहुत काम का आदमी था। उसने कभी अपनी परवाह नहीं की, हुक्म पर कट जाने वाला वीर था वह। मुझे उसकी......

मास्टर के हाथ से पत्र छूट गया। लक्ष्मी बेहोश होकर गिर गयी।

आदमी

पाल्यन ने इधर उधर देख कर चुपचाप कौड़ियाँ के घर में झाँका। बूढ़ा शायद सो रहा था। घर के भीतर धुँधला दीपक जल रहा था। कुछ भी नहीं दीखा। दीखने का अर्थ था कौड़ियाँ परयन् की लड़की चिन्नी का दीख जाना। पाल्यन हताश सा लौट आया। एक भूली हुई कसक हृदय के भीतर ही जाग उठी। जाकर सड़क के किनारे उस टूटी डौरी पर बैठ रहा। घर में भी कौन है, जो फिर वहीं जा मरे? दिन भर क्या काम करने को काफ़ी नहीं है?

एकाएक पण्ढार ज्योतिषी जाता हुआ दिखाई दिया। बूढ़े का इधर उधर नाम था। बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा सब उससे भविष्य के बारे में पूछते थे। पण्ढार के हाथ में यश था। जो बात उसने बताई, अकसर सच निकली। पाल्यन उसे देख कर आतुर सा पुकार उठा। पण्ढार ने निकट आकर उसकी ओर देखा और कहा—'क्या है रे?'

'स्वामी, एक बात पूछना चाहता हूँ।'

'कह तो।'

'मेरा ब्याह कब होगा?'

पण्ढार ने घूर कर देखा और कहा—'तुझे पैसे की कमी है?'

'है, महाराज!'—अवरुद्ध कण्ठ से पाल्यन ने कहा, और वह अपने आप काँप उठा।

वृद्ध ने युवक की आतुरता देखी और कहा—'अभी दो महीने ठहर जा।'

पाल्यन समझ गया। बिना पैसे के बात ज्योतिषी के मुँह में ऐसे बार बार अटक जाया करती है, जैसे पथरीली भूमि पर बालक ठोकर खा खाकर गिरता हुआ चलने का प्रयत्न करता है। उसने अपनी गुड्डै (तहमत) की अंटी में से एक चवन्नी निकाली और पण्ढार के हाथ पर रख कर कहा—'स्वामी, मेरा मनोरथ पूरा होगा?'

पण्ढार ने कुछ देर सोचा और कहा—'अभी देर है, बालक! कुछ ठहर जा।'

वृद्ध के चले जाने पर पाल्यन का हृदय एक बार सामने खड़े नारियल के पेड़ की तरह ऊँचा होता चला गया और दूर...। उसमें नारियल से लग गए, जिन्हें वह सरलता से कभी भी नहीं तोड़ सकता और जिनके गिरने से नीचे रहने वाले व्यक्ति के सिर फट जाने की आशंका रहती है।

पाल्यन उदास होकर उठा। राह में उसने देखा, दो पोली परस्पर झगड़ रहे थे। उन्हें देख कर वह घृणा से भर जाता है। आवारे! दिन भर सोना, रात को सोना! जिन्दगी में कभी भी इन लोगों को कोई काम नहीं। बड़े घरानों के लोग बाहर कूड़ा जहाँ डालते हैं, वहीं अपने खाने की जूठन फेंक जाते हैं। पोली

उस जूठन पर कुत्ते की तरह टूट पड़ते हैं, परस्पर लड़ते हैं और फिर उसी जूठन को खा खाकर कट्टे कट्टे हो जाते हैं। कोई कोई तो वेश्या के दरवाजे पर पड़े रहते हैं। पाल्यन अपनी बात भूल कर उनके विषय में घृणा से विषाक्त हो गया। जब वह घर पहुँचा, रात बहुत बीत गई थी। सुबह काम पर जाना है, सोच कर वह और कुछ न कर चुपचाप चटाई पर लेट रहा।

(२)

घर के द्वार पर केले के पत्ते बाँधे गए। घट स्थापित हुए। एक नहीं, अनेक स्त्रियों—सुन्दी, काताई, मरताई, करपाई, कुप्पी, रामाई ने उसका श्रृंगार किया। फिर गानों की ध्वनि से घर गूँजने लगा।

चमारों का गुरु वल्लूव पण्ढार द्वार पर आ बैठा। वह कभी ब्याह कराते समय भी उनके घर में नहीं घुसता। अतः उनकी शादियाँ द्वार पर ही होती हैं। एक नहीं, दो नहीं, अनेक पीढ़ियों से यही होता चला आ रहा है। उस दिन परयन् लोगों ने भी गुड्डे खोल कर कच्छ लगाए और रात भर के लिए पाल्यन भी ब्राह्मण हो गया। शाम को उसने जनेऊ पहना और तिलक लगा कर मन्त्रोच्चारण किया। चिन्नी के गले में ताली (तिरमंगल्यम) बाँधी गई। उच्च जातियों के सुहाग चिह्न का उसे एक रात मात्र का अधिकार था।

विवाह हो गया। सुबह ही जनेऊ और ताली उतार कर फेंक दिए गए। पाल्यन ने एक बार स्नेह से चिन्नी की ओर देखा। दोनों का नीला काला मिश्रित रंग था। दोनों मुस्कराए। गालों पर

स्वाभाविक लाली आई; किन्तु अजीब बैंगनी रंग के रूप में प्रतिबिम्बित हुई।

पाल्यन घर लौट आया। चिन्नी भी आ गई। घर बस गया। जैसे सब कुछ बदल गया। अब पाल्यन को किसी से मिलने की फुर्सत नहीं रही। अब वह कभी शिकायत नहीं करता कि मालिक बहुत तंग करता है। चिन्नी जीवन का अनूठा केन्द्र बन गई। तोप्लाँ और वीरन् जब कभी कोई जरूरत पड़ती है, घर ही आ जाते हैं।

अब पाल्यन पहले की तरह इधर उधर चक्कर नहीं मारता। काश, आज माँ बाप होते, तो बेटे को भरा पूरा पाकर कितना सुख पाते! और पाल्यन चिन्नी को सुनाता—कैसे वह अनाथ होकर दर दर ठोकरें खाता, नौकरियाँ करता, फिरा! कितने कितने दुःख नहीं उठाए उसने! और चिन्नी एक बार वेदना से रोती, फिर प्यार से आँसू भरी आँखों को लेकर मुस्कराती।

(३)

चिन्नी ने ढेर सा चावल लाकर पत्ते पर परोस दिया और अलग खड़ी हो गई। पाल्यन मन ही मन कुढ़ा, बोला—'बस, और कुछ नहीं?'

चिन्नी ने कहा—'बगल में ही तो नारियल रखे हैं।'

पाल्यन मुसकराया। उठा कर एक नारियल जमीन पर जोर से मारा। खोपड़ा फट गया। रस टपकने लगा, तब उसे उठा कर चावल पर सान लिया। वह गरी को साग की तरह लगा लगा कर खाने लगा। खाने के बाद हाथ धोकर उसने कहा–'चिन्नी, कल तक यह घर मुझे काटे खाता था। आज तो दुनिया ही बदल गई है।'

केले के पत्ते को फेंक कर तब तक वह लौट आई थी। चिन्नी मुसकराई। उसके हृदय में भविष्य की आशाएँ थीं। इसी समय किसी ने द्वार पर झाँका।

'कौन है?'—पाल्यन ने पान खाते खाते पूछा।

'मैं हूँ।'—शब्द सुनाई दिया।

पाल्यन जाकर वाशतिराएँ पर खड़ा हो गया। देखा, शिन्न पैयन पोली था। घृणा से मन फुफक उठा, बोला—'क्या है?'

शिन्नपैयन ने कहा—'अब तो जूठन भी नहीं डालते। ब्याह हो गया, तब से ऐसे कंजूस हो गए हो?'

पाल्यन ठहाका मार कर हँस पड़ा। उसने तीखे स्वर में कहा—'जूठन बड़े घर के लोग डालते हैं। हम लोग तो स्वयं मुश्किल से पेट भर खा पाते हैं। उधर ही जाया करो, समझे?'

पोली ने कहा—'ब्राह्मण तो धीरे धीरे यह प्रथा बन्द करते जा रहे हैं। तुम क्यों अपने यश को भुला देना चाहते हो?'

पाल्यन ने तीखे स्वर को और तीखा बना कर कहा—'मेहनत क्यों नहीं करते? कुत्तों की तरह जीवन बिताते हो और अपने आपको सुखी समझते हो?'

पोली ने चिढ़ कर कहा—'तुम नीच जात! कोल्हू के बैल, दूसरों के दास! समझते हो, सारा तेल तुम्हारा ही है?'

पाल्यन का हृदय विक्षुब्ध हो गया। एकदम चीख उठा—'कुत्ते! जूठन से पेट भरने वाले! हम तो जैसा परमात्मा ने पैदा किया है, वैसे रहते हैं। जितनी चादर है, उससे बाहर पैर नहीं पसारते। तुम्हारी तरह जानवर नहीं, आदमी हैं।'

'आदमी बनने का ढोंग है मूर्ख, तभी तो तुम हमसे भी गए

बीते हो। अरे, हम भिखारी नहीं हैं, तुम्हारी तरह दास नहीं हैं, समझे ? आदमी का गुण नहीं, भगवान का गुण मानते हैं। उसने मुँह दिया है, वही उसे भरता भी है।'

पाल्यन के तिक्त अधर भीतर की ओर मुड़ गए और बलात् उसके मुँह से निकल गया—'हरामी पिल्ले !'

पोली ठहाका मार कर हँसा और चला गया। पाल्यन लौट कर भीतर गया। वह उदास था। चिन्नी ने कहा—'ब्राह्मण इन्हें न दें, वे तो समर्थ हैं; लेकिन हम क्या इनके शाप को सह सकेंगे ?'

पाल्यन ने धीरे से कहा—'लेकिन चिन्नी, इतनी आमदनी कहाँ है, जो अब जूठन भी फेंका करें ?'

चिन्नी चुप हो गई।

(४)

शाम हो गई थी। अँधेरा छाने लगा था। ऊँची जातियों के मुहल्ले में वीणा लेकर गाने वाले ब्राह्मण साधु का सुरीला शब्द गूँज रहा था। उस स्वर को सुन कर औरतें चावल लेकर निकली थीं और उसके झोले में डाल जाती थीं।

पाल्यन घर लौट रहा था। एकाएक ठिठक गया। ताल के पीछे झाड़ियों में कुछ चमक रहा था। बढ़ कर देखा, शिन्नपैयन हाथ में आरिया लिए पड़ा है। वह प्राणहीन था ! पास में ही उसकी कैसे बदबू उड़ रही थी; किन्तु मरने के बाद भी वह उस आरिया को खाना चाहता था, क्योंकि वह भूखा था।

पाल्यन ने देखा और घर आकर उसने चिन्नी के हाथ से चावल लेकर भीतर छिपा लिया। कहीं कोई उससे उसे छीन न ले ! चिन्नी भयातुर सी पाल्यन से चिपक गई !

जीवन की तृष्णा

रेल ज्यों ज्यों स्टेशन के निकट पहुँचने लगी, मेरी हालत भी खराब हो चली। यहाँ तक कि आस पास बैठे मुसाफिरों को एक हँसमुख दिल्लगीबाज आदमी का इस तरह बदल जाना, बहुत ही अद्भुत प्रतीत हुआ। बशीर थोड़ी देर घूर कर देखता रहा और कुछ समझ न सकने की असमर्थता से कंधे उचका कर रह गया। रेल में मेरे सभी दोस्त बन गये थे, लेकिन अब मुझे लगा वे चेहरे आदमियों के से नहीं थे, बनाने वाले ने हड्डी को काट कर उनकी आकृति की छाप लगा दी थी।

भय मुझे अनेक बार हुआ है। मैं भूगर्भवेत्ता होने के नाते अजीब अजीब वस्तुओं के आगे खड़ा हो जाता हूँ। उस समय मुझे तनिक भय नहीं होता। पर कभी कभी जब घने अंधकार में किसी के कराहने की कर्कश आवाज गूँजती है तब मेरे प्राणों के भीतरी स्तर तक एक दहशत ऐसे डूब जाती है, जैसे सूखी पृथ्वी पर पानी डालते ही थोड़ी देर बाद अपने आप गायब हो जाता है।

एकाएक झटका लगा, रेल रुक गई एक बार रेल के कुछ

भाप छोड़ने का सा शब्द हुआ और छोटा स्टेशन कुछ जाग उठा। मैं उतर पड़ा।

रात की अँधियारी नीरवता वनान्त के ऊपर घहरा रही थी। मैं इस अंधकार को नहीं सह सकता, क्योंकि मैं आलोक का पथिक हूँ। तिमिर से मेरा दम घुटने लगता है, क्योंकि मैं अन्धा हो जाता हूँ। मन में आया उस विक्षोभ में भी एक बार जोर से चिल्ला उठूँ—मैं तुम्हें घृणा करता हूँ, मैं तुम से घृणा करता हूँ—किन्तु स्वर गले में अटके रह गये। आधी रात का नगारा बज रहा था, मानों यह अन्धकार, यह उन्मत्त सनसनाती वायु सब उसी की प्रतिध्वनि थी। और जब मैंने घर का द्वार खटखटाया उस समय मुझे ऐसा लगा कि आसमान बीच में से फट रहा हो।

(२)

दरवाजा चूल पर अर्रा कर झूल गया। अन्धकार में मैं भीतर का कुछ भी नहीं देख सका। चेतना ने फिर से मस्तिष्क पर घूँसा मारा और एक कर्कश स्वर मेरे कानों में बज उठा—'कौन हो ? क्या चाहते हो ?'

शब्द मुँह तक आकर रुक गये। लगा जैसे किसी ने खींच कर चाँटा मार दिया हो। 'मैं हूँ, बिहारी ! सौनो ?'

बुढ़िया हट गई मैं भीतर चला गया सौनो भी चुप है सब कुछ दहशत में डूबा हुआ है। शांता मुस्करा दी। कहा—'बैठो।'

मैं बैठ गया। बैठे बैठे काफी देर हो गई। वह मुसकराई है जैसे ज्वालामुखी में से बहुत दिन बाद लपट निकली है।

मेरे सामने वही लड़की बैठी है, जिसका रूप देख कर इन्द्र-धनुष बल खाता था, जिसके यौवन की गंध से अमराई काँप

जाती थी। आज उसमें क्षय भर गया है। कोढ़ भीतर ही भीतर नहीं गलता है, पर वह गल रही है, उसकी श्वासों में विष है, शरीर में विष है, पर मुझे देख रही है। उसकी आँखों में वही चिह्न हैं जो मेरी प्रतीक्षा में घुलते घुलते भी नहीं मिटे हैं। मेरा पाप है कि वह आज तपेदिक से घिर गई है। किन्तु आत्मा का आनन्द ताराओं में छलक आया है। जो स्नेह इतने दिन दूर रह कर भी नहीं मिला, वह इतना अमर है कि तपेदिक भी उसका क्षय नहीं कर सकता। जब प्रेमी सूली पर चढ़ गया है, तब प्रिय आया है और उसकी घबराहट ही उसका शृङ्गार है। कितने दिन बीत गये, एक बाग उजड़ गया, दूसरे में आग लग गई, किसी क्षीण स्मृति का तार दोनों को फिर आमने सामने ले आया है और भविष्य...किसी पर भी बात करना अनावश्यक है। हम एक दूसरे को देख रहे हैं। बात क्या होगी अब ? वह चुप है। उसकी शांति ही उसकी अथाह तृप्ति का चिह्न है। एक बात कही—'भूखे हो, कुछ खाओगे ?'

मैं चाहता हूँ कुछ खाऊँ। मुझे भूख लगी है। पर बुढ़िया चीख पड़ी—'नहीं वह खाना नहीं खाओगे तुम। तुम्हें तो रहना ही है।'

शान्ता चुप रह गई, जैसे अपमान ने फन बिलकुल कुचल दिया। प्यार से भी तो ऊँचा है जीवन, प्यार जिसके पथ का है, केवल दिल बहलावमात्र है......मैं बिना खाये ही जाकर लेट रहा। कुछ देर वीभत्स सन्नाटा छाया रहा, जैसे घर मर गया हो। इसके बाद फिर गुरगुराने की आवाज आई। बुढ़िया ने अधिकार-भरे स्वर से कहा—

'और अपने खाने में से खिला कर उसे भी मारना चाहती थी ?'

'पर तुमसे तो इतना भी न हुआ कि अपने खाने में से उन्हें कुछ दे देतीं ।'

'आहा ! शान्ता बेटी ! मुझे जिन्दा नहीं रहना है क्यों ? अरी अब तुझे किसकी लालसा है ? तपेदिक की मारी !'

घृणा ! वही घृणा जो धन में है, धर्म में है, संसार में है, जीवन के मृत्यु के प्रति भी है। और फिर एक और आवाज सुनाई दी—'तपेदिक है मुझे । कल न मरी आज, दो दिन रह कर भी मैंने सुख नहीं पाया, तो जन्म लेकर ही क्या किया ।'

बुढ़िया हँसी । बोल उठी—'ओहो ! महारानी इस हालत में भी सुख भोगना चाहती हैं। अरी तुझे जब मरना ही है, तो दूसरों को सुखी देख, दूसरों का खाना क्यों छीनती है ?'

और मैं जानता हूँ, मैं भी जीवित रहना चाहता हूँ। इसके बाद खाँसी—तपेदिक की खाँसी, मौत की गुर्राहट......

रात की कड़कड़ाहट बढ़ चली। उस सन्नाटे में कभी कभी गीदड़ों की आर्त्त पुकार डरावने पंख फैला कर गूँज उठती थी मैं चुपचाप कोठे में पड़ा रहा गुदड़ियाँ खींच कर सिर पर ढाँक ली थीं। फिर भी कभी कभी दाँत बज उठते थे। छत पर बिल्लियों में लड़ने की गुर्राहट, फिर एक बिल्ली का भयानक रूप से करुण स्वर में रोना—जैसे उसकी वेदना के सामने मनुष्य की वेदना भी कुछ नहीं, शायद लड़ाई में उसकी एक आँख फूट गई थी...काश अपनी बदसूरती को वह हरा चश्मा लगा कर छिपा सकती ।

मन ही मन मैं हँसा। मुझे विश्वास हुआ, मैं अमानुषिक नहीं हुआ हूँ। अभी भी मुझे हँसी सूझ सकती है। बिल्लियों का रोना बन्द हो गया।

एकाएक रोने की दर्दनाक आवाज से आसमान गूँज उठा। वह स्वर टकरा कर लौट रहा है, मेरी खाट के पास आकर किसी छाया की तरह रुक गया है और झुक कर मेरी गर्दन पकड़ लेना चाहता है।

मैं चीख उठा, 'सौनो !'

बाहर निकल कर देखा। सौनो सिर पीट कर रो रही थी। मैंने पूछा—'क्या हुआ ? सौनो ? क्या हुआ ? फिर भी बुढ़िया ने कुछ न कहा और वैसे ही रोती रही, जैसे बन्द टूट गया हो और फलल फलल करके पानी धीरे धीरे खौल खौल कर गिर रहा हो; जैसे कोई आखिरी साँसें ले रहा हो।'

'मैं अकेली रह गई हूँ, भैया मैं अकेली रह गई हूँ।' सौनो का कराहट भरा स्वर सुनाई पड़ा। मेरा मन घृणा से तिक्त हो गया है। तो क्या शांता......! और इसे भी अपने अकेले होने का दुःख है ? जीवन की लहर जब लौट गई, तब चट्टान को अपनी कठोरता का आभास हुआ है ! जब पतंगा जल चुका है, तब दीपक को अपनी झुलस पर, बर्बरता पर पश्चाताप हुआ है !

कोठे के द्वार पर खड़े होते ही देखा। एक खाट पर पड़ी थी उसी कल वाली घिनौनी मैली साड़ी में लिपटी। पर वह मनुष्य का शरीर था। और आज अपने मुख पर एक बर्बर तृष्णा थी, जो चुम्बन से लज्जित नहीं होती, जो आलिंगन से चकनाचूर नहीं होती......! महानारी !!

मैंने देखा, वह जैसे हँस रही थी। आज उसके लिए अभिसार की बेला आ गई थी। और मैंने देखा वह शांत थी, जैसे आँधी घुमड़ कर बीच आकाश में थम गई हो। धुँधले दीपक की डरावनी छाया में एक बार मुझे लगा, वह केवल माँ थी। माँ थी कि वह ममता के सहारे अपनी जवानी के बुढ़ापे को ठेल रही थी। मेरे स्नायु झनझना उठे थे। क्योंकि उसकी बड़ी बड़ी आँखें काँच की तरह चमक रही थीं, चिराग की लौ में सफेद, उस सफेदी में पारे की तरह कुछ हिलता हुआ, तो क्या मनुष्य का जीवन यही है ? क्षण भर में ही मेरा स्वप्न खंड खंड होकर गिर गया।

जीवन में आज पहली बार हम अकेले थे। जी करता था मनमाना प्यार कर लूँ !

मैं निर्भय उसके पास चला गया। तकिये पर कुहनी थी, चादर में हड्डी के पाँव थे और उसके दाँत बाहर निकल रहे थे, क्योंकि जबड़ों के उपर की पंखुरियाँ सूख चली थीं। उस के कपड़ों पर खून था, ताजा, बदबू की शायद मुझे भावना ही हो, गर्म... तपेदिक के कीड़ों की नहर, दाँत में लगा, मुँह में लगा...... जिन्दगी का तार......वह खून जो तनिक स्वच्छ होता, तो उससे दर्शन, विज्ञान, कविता और न जाने, जाने क्या क्या निकल पड़ते, किन्तु वह अधिकारों से वंचित था, क्योंकि वह विषैले कीटाणुओं का दास था, गुलाम था, अगर वह साफ होता, तो मृत्यु के स्थान पर मातृत्व से उसकी गोदी भर गई होती......

मैं उसका प्रेमी था। वह मेरी प्रिया नहीं, वह स्वयं मुझे प्यार करती थी। जाने दो उस प्रेम को जो यदि जीवन में अद्भुत शक्ति उत्पन्न कर सकता है, तो भीतर ही भीतर उसे खोखला भी।

मेरा हृदय निर्धूम—जल रहा है। मैं सोच रहा हूँ कि वह जी रही है, क्योंकि उसका जीना और मरना एक चाह भर ही था। मर गई तो बुझ गई, जी रही थी तो चाह की सी एक सत्ता मात्र—

अन्धकार में वह आँखें झलमला रही थीं, जैसे रेगिस्तान में मृगतृष्णा जगाने वाली जलती हुई रेत......

मैं रोना चाहता हूँ, किन्तु रो नहीं सकता। मेरे जीवन का विक्षोभ मेरे पैरों के सामने लाश बन कर गिर गया है। इसे ठोकर मार देना मेरी परम्परा के बाहर है और इसे छू कर जिला देना मेरी मनुष्यता के परे है और न मेरे पास तृष्णा की आग ही है कि इसे जला कर खाक कर दूँ, नाम मिटा दूँ, निशान मिटा दूँ और फिर विजय के गर्व से उसी भस्म पर खड़ा होकर पुकार उठूँ—यह किसके यौवन का गर्व है, यह किसकी विक्षिप्तता का एकमात्र परिणाम है......

और घूमने लगती हैं मुझे दो आँखें, जिनमें लोहे के प्याले में पिघली हुई चाँदी की सी झाँई है......

सच, रोने को तो जी कभी नहीं चाहता। बस याद आया करती है—एक, दो...तीन...

किन्तु मैं जानता हूँ, यह विक्षोभ मेरी समाप्ति नहीं है, वह जीवन का एक पृष्ठ था, जो सदा के लिए बीत गया, पर वह आँखें मुझे घूर रही हैं—जिनका मरण ही जीवन का सबसे अमूल्य प्रश्न है—तुम आ गये ?

नारी की लाज

भोर की सुनहली आभा कब आकाश में फूटी और कब लोप हो गई, यह दिल्ली के दरियागंज के उस छोटे से घर के नीचे के हिस्से में जरूरत से ज्यादा किराया देकर रहने वाले नौकरी पेशा युवकों में कोई भी नहीं जान सका।

रोशनदान से धूप आ कर मेज पर फैल रही थी, जिसके ताप में जगदीश अपने हाथ सेंकने का प्रयत्न कर रहा था। रामसरन गा गा कर कविता पढ़ रहा था और दीपक सुनता हुआ सा चुपचाप सिगरेट पीने में तन्मय था।

जगदीश ने कहा—'यार, आजिज आ गये इस जिन्दगी से! कमबख्त में कोई तो मजा नहीं रहा।'

दीपक के होंठों पर एक मुसकराहट काँप उठी। उसने अपनी आँखों को उठा कर देखा।

रामसरन हँसने को उद्यत सा कह उठा—'उठो! शायद पड़ोसी के यहाँ नौकरानी इस वक्त बरामदे में झाड़ू दे रही होगी। लगाओ चेहरे पर क्रीम!'

तीनों हँस पड़े।

तीनों तीन अलग अलग प्रेसों में काम करते हैं। आधीरात तक अखबार छपता है। प्रूफ ठीक किये, लौट आये, और फिर दिन भर खाली। उस वक्त उन्हें अपने अभावों की भीषणता कचोट उठती है। कुछ सोने में दिन कटता है, कुछ पढ़ने में, कुछ लिखने में। अपनी दृष्टि में तीनों कुशल वक्ता हैं तीनों बहुत अच्छे लेखक हैं और यदि इन्हें भी रवि ठाकुर का सा वंश मिलता, तो शायद चंद्रमा तक अपनी ख्याति पहुँचा देते।

पड़ोस में चन्दा है, जिसे रामसरन ने अपने मन की आग में जलाने के लिये कच्चा मांस समझ रखा है। किन्तु यह मामला शिष्टता की सीमा के पार नहीं।

दीपक ने कहा—'हाँ, भई राम, कुछ सुनाओ, यार! अब क्या सब खत्म हो गया?'

'अजी, कहीं ऐसी बातें छिपती हैं?' जगदीश ने हँस कर कहा—'जब मामला असलियत पर आता है, तब यार दोस्तों की राय कभी नहीं ली जाती!'

तीनों हँस पड़े।

दोपहर का सन्नाटा गहरा हो उठा। बाबू लोग अपने अपने दफ्तरों को चले गये थे। घरों में अधिकतर स्त्रियाँ रह गई थीं। लड़के स्कूल और कालेज जा चुके थे।

रामसरन ने कहा—'यार, यह किताब पढ़ी?'

'पढ़ी! मुझे तो कुछ जँची नहीं!' दीपक ने सिगरेट सुलगाते हुये कहा—'क्या है इसमें?'

'अनमोल है, बेजोड़ है, जनाब! पादरी कहता है कि सब मनुष्यों का पिता ईश्वर है। अतः किसी को भी बे बाप

का समझ कर घृणा मत करो !'—रामसरन ने दृढ़ स्वर में कहा।

'तो करता कौन है ?' जगदीश ने तकिया सीने के नीचे दबाते हुये कहा—'आज तो, यार, ज्यादा खा गये !'

दीपक हँसा। उसने कहा—'यह तो रोज की शिकायत है !'

इसी समय रामसरन ने मुड़ कर बाहर देखा। उसने देखा, चन्दा बाहर खड़ी अपनी किसी पंजाबी सहेली से बातें कर रही थी। वह हल्के से खाँस कर उठा, शीशे में मुसकरा कर देखते हुये बाल ठीक किये, और गुनगुनाता हुआ बाहर निकला। दोनों पीछे रह गये मित्रों की खिलखिलाहट की आवाज कमरे में गूँज उठी।

लड़कियों ने कनखियों से देखा। एक बार मुसकरायीं, और फिर भीतर लौट गयीं।

रामसरन मुँह बिचकाये भीतर लौट आया।

'भला यह कोई बात है ?' उसने दोनों मित्रों से कहा—'मेरी सूरत कमबख्त क्या इतनी बुरी है कि देखने से तो कोफ्त होती है ?'

'क्यों ?' दीपक ने धुँआ उगल कर कहा—'ऐसा मुगालता क्यों हुआ आपको ?'

रामसरन ने कहा—'वह लौट जो गई ! कसम है, अगर इसी से शादी हो जाय, तो कल हम आदमी से देवता हो जायँ !'

जगदीश ठठा कर हँसा। उसने कहा—'तो मतलब यह कि आप चाहते हैं कि वह आप से प्रेम किया करे, कि आप निकले नहीं कि वह गाना शुरू करे, 'तू डाल डाल हम पात पात...'

दीपक ने चिल्ला कर कहा—'शाबाश ! अब समझ में आया, मिस्टर रामसरन, कि आप औरतों की इतनी आजादी क्यों चाहते हैं ! औरतों को अगर आजाद किया जाय, तो उन्हें एक एक जोड़ी जूता भी अपनी रक्षा करने के लिये बाँट दिया जाय !'

एकाएक एक स्त्री स्वर सुनाई दिया। वह चिल्ला चिल्ला कर कह रही थी—'अरे, बचाओ कोई लाज, बचाओ ! ओ हिन्दुओं ! कोई हमारी लाज बचाओ।'

उस भयानक आवाज को सुन कर रामसरन के चेहरे से मुसकराहट गायब हो गई। तीनों ने अचरज से एक दूसरे की ओर देखा। सड़क पर एक औरत चिल्ला रही है, चिल्ला चिल्ला कर धर्म की दुहाई दे रही है।

तीनों ने बाहर आकर देखा, मुहल्ले की अनेक स्त्रियों ने उसे घेर रखा था। वह स्त्री एक सफेद साड़ी और अँगियाँ पहने थी। उसकी गोद में एक बच्चा था। थी तो वह काली किन्तु अभी यौवन उसमें बाकी था। देख कर लगता था कि जो मुसकान उसने सोलह वर्ष की आयु में सीखा था, उसे वह बिलकुल ही भूल गई हो, ऐसा नहीं।

स्त्रियाँ अब भी कुछ समझ नहीं पाई थीं। रामसरन ने चन्दा को देखा, और एकटक देखने लगा। चन्दा ने आगे आ कर पूछा—'अरे हिन्दुओं, अरे हिन्दुओं ही चिल्लाती रहेगी या कुछ बतायेगी भी ? आखिर कुछ बात भी तो हो ?'

स्त्री की चिल्लाहट फिर भी बंद नहीं हुई। जब उसने देखा कि काफी स्त्रियाँ आ गई हैं, और पड़ोस के कुछ बाबू भी अलग

खड़े हो कर देख रहे हैं, तब उसने कहा—'ऐ भाई, हमारी लाज बचाओ।'

'तो कोई क्या कर रहा है?' चन्दा ने मुसकरा कर कहा।

एक अधेड़ स्त्री ने कहा—'क्या बात है, री? भूखी है?'

औरत ने मुड़ कर कहा—'वह देखो, वह रही! वह मेरी साथिन है। हम बंगालिन हैं। अकाल में वहाँ से भाग कर आई हैं। अब तुम्हारे ही साथ हमारी लाज है!'

सबने देखा, वह बंगालिन नहीं लगती थी।

दीपक ने धीरे से कहा—'पेशेवर है! कोई बंगालिन अंगालिन नहीं है!'

स्त्री, जो रह रह कर युवकों की ओर टेढ़ी दृष्टि से देख लेती थी, एकदम उनकी ओर मुड़ी। उसने कहा—'भैया, यह तुम्हारी बहिन है। इसके होनेवाला है...'

उसकी बात अधूरी रह गई। देखा गया, सड़क की दूसरी ओर की एक दीवार से सटी एक और औरत बैठी थी, जो काली तो कम नहीं, किन्तु जैसे यौवन उसका अधिक निखरा हुआ है। उसके चेहरे पर घोर मलीनता छा रही है। जैसे वह थक गई है, अब और चल नहीं सकती। गर्भवती है, और काफी बढ़ा हुआ गर्भ है। सबकी खोजती हुई दृष्टियाँ उसके शरीर को जा जा कर छू रही हैं। और वह निश्चेष्ट बैठी है कि उसकी लाज आज इतनी ही है कि उसकी दरिद्रता पशुतामात्र न रह जाय, कम से कम उसे मनुष्यत्व का एक अधिकार मिले कि उसे जनने के लिये एक बन्द घर तो प्राप्त हो।

स्त्रियों में सहानुभूति की लहर दौड़ गई। अधेड़ स्त्री ने दया

से कहा—'बेचारी! जाने कौन सायत थी। भूख के मारे घर छोड़ना पड़ा। कोई न रहा होगा इसके।'

दीवार से सटी स्त्री एक प्रतिमा है। जो चाहे आ कर पूजा करे, जो चाहे आ कर उसे खड़ा कर दे। उसके पेट में दर्द हो रहा है। हो सकता है कि इसके गर्भ में संसार का सब से बड़ा कवि हो या सबसे बड़ा वैज्ञानिक!

दीपक ने जगदीश की ओर देखा। दोनों ने एक बार सहानुभूति से देखा। फिर आँखों में अविश्वास का भाव आया। किन्तु इतने भीषण कांड को देख कर कुछ भी कहने का साहस नहीं हुआ।

एक बार रामसरन ने चन्दा की ओर देखा, और फिर मुँह फेर कर खड़ा हो गया! स्त्रियों ने उसे एक आना, दो आना करके पैसे देने प्रारम्भ किये। कितनी युवतियाँ दौड़ कर भीतर गईं, और कपड़े और आँटा निकाल लाईं।

एकाएक रामसरन आगे बढ़ा। उसने कहा—'सुनिये!'

उसके भारी स्वर को सुन कर स्त्रियों ने मुड़ कर देखा। रामसरन क्षण भर झिझका, फिर कहा—'आप लोग इस औरत को आटा, कपड़े और पैसे दे रही हैं लेकिन इससे औरत की परेशानी का हल कहाँ निकला?'

सब के नयनों में विस्मय झलक उठा।

रामसरन ने फिर कहा—'इसे किसी बन्द जगह की जरूरत है, दवाओं की जरूरत है। किसी मदद करनेवाली की जरूरत है। यह सब आपने किया नहीं। जहाँ तक लाज का सवाल है,

वह पैसे देकर तो बचेगी नहीं। आप में से कोई इसे अपने घर में ले जायँ, तो कहीं अच्छा हो !'

जो औरत सड़क पर चिल्ला रही थी, वह एकबारगी सिहर उठी। स्त्रियों में काना फूँसी होने लगी—'यह कैसे हो सकता है ?' 'हमारे घर में ऐसा इन्तजाम कैसे हो सकता है ?' 'मुन्ना के बाप क्या ऐसा होने देंगे ?' 'यह भली रही ! ऐसी क्या दुनिया में एक ही है ? हम किस किस को गले लगाते फिरें ?' 'न, बाबा, यह नहीं हो सकता !' 'आज कल का तो जमाना ही अजीब है ! उँगली पकड़ कर लोग पहुँचा पकड़ते हैं !'

सब ने एक असमर्थता से एक दूसरे की ओर देखा। चन्दा रामसरन की ओर अपने बड़े बड़े नेत्रों को फाड़े देख रही थी कि आज इस छबीले को हो क्या गया है।

रामसरन ने फिर कहा—'पैसे देकर आपने बहुत अच्छा किया। लेकिन जिस काम को करना है, वह भी करें। एक ताँगा मैं लाये देता हूँ। आपमें से कुछ बड़ी बूढ़ियाँ इसे अपने साथ बिठा कर किसी जच्चेखाने में भर्ती करा दें।'

सन्नाटा बना रहा। दीपक और जगदीश देखते रहे।

रामसरन ने कहा—'ताँगे के पैसे मैं दे दूँगा। इससे कम से कम एक काम तो होगा। कम से कम यह बात तो नहीं फैलेगी कि दिल्ली की सड़कों पर हमारी माँ बहिनों की कोई इज्जत नहीं रह गई है !'

स्त्रियों ने थोड़ी देर तक परामर्श किया। बात कुछ जँच गई। तीन अधेड़ स्त्रियाँ आगे बढ़ आईं।

उनमें से एक ने कहा—'बेटा, तुमने बिलकुल ठीक कहा !

देखो, तो कितनी शर्म की बात है! जाओ, तुम ताँगा ले आओ। हमारे साथ चलो। हम इसे भर्ती करा देंगे।'

रामसरन ने अधछिपे तौर से चन्दा के मुख की ओर देखा। वहाँ कोई खास बात न थी। रामसरन ने चौराहे की ओर पग उठाया, किन्तु चिल्लाने वाली स्त्री ने धीरे से कहा—'बाबू!'

रामसरन ठिठक गया। उसने कहा—'क्या है?'

स्त्री ने दयनीय स्वर में कहा—'नहीं, बाबू! इतना कपड़ा, पैसा काफी है! अब हम चले जायँगे!'

'चले जायँगे!' रामसरन के मुँह से अनायास ही निकल पड़ा—'चले ही जाने से क्या सब काम बन जायगा? बीच सड़क पर चिल्ला चिल्ला कर हिन्दू धरम की दुहाई दे रही थी, और अब कहती है 'चले जायँगे'!'

उसने मुड़ कर देखा। जगदीश, दीपक, चन्दा और अन्य स्त्रियाँ सब विस्मय से घूर रहे थे। आखिर इसका मतलब?

एक अधेड़ स्त्री ने कहा—'वाह री! इतना हो हल्ला किया, और जब मदद करने लगे, तो कहती है कि नहीं चाहिये! हम क्या कुछ तेरा बुरा कर रहे हैं?'

स्त्री का मुख एक बार लाज से लाल हो उठा। दीवार के सहारे बैठी स्त्री ने साड़ी माथे पर और आगे खिसका ली।

स्त्री ने धीमे से कहा—'अस्पताल में हमें नहीं लिया जाता!'

'नहीं लिया जाता?' रामसरन ने कहा—'कौन कहता है? सब जच्चाखाने खैराती हैं। कोई भी गरीब से गरीब जा सकता है!'

स्त्री कुछ कहना चाहती थी, किन्तु जैसे गले में कुछ अटक

रहा था, जैसे वह कुछ इतना भयानक था कि उसके सामने भीख माँगने का पाप भी कुछ न था।

रामसरन ने आवेश में कहा—'यह औरत मक्कारी कर रही है! ऐसे ही पेट पर कपड़ा बाँध लिया है! भीख माँगने का एक तरीका निकाल रखा है कि धर्म का, लाज का नाम लिया कि कुछ न कुछ मिल ही जायगा! कोई बात नहीं! व्यर्थ समय नष्ट किया!' क्रोध से उसकी वाणी रुद्ध हो गयी।

चन्दा ने आगे बढ़ कर कहा—'कहती क्यों नहीं? क्या डर है तुझे अस्पताल जाने में?'

स्त्री ने सिर झुका कर कहा—'गई थी, बीबी, इसे ले कर लेकिन भर्ती नहीं किया!'

चन्दा ने रामसरन की ओर ऐसे देखा कि पहले सुन तो लो फिर हल्के से किन्तु स्पष्ट स्वर में पूछा—'तो क्यों नहीं भर्ती किया आखिर? कोई कारण भी बताया?'

स्त्री का गला रुँध गया। उसने एक बार इधर उधर देखा, और फिर साहस बाँध कर धीरे से कहा—'बीबी, बाप का नाम पूछते थे! मैं क्या बताती।'

चन्दा एक दम पीछे हट गई। रामसरन का मुख कान तक आरक्त हो उठा। स्त्रियों की भीड़ छँट गई, जैसे कुछ भी हो...अब शायद वे स्त्रियाँ नहीं, क्योंकि उनमें और पशु में शायद अब कोई भी भेद नहीं!

और दोनों धीरे धीरे चली जा रही थीं।

सारनाथ के खँड़हरों में

साँझ की पीली किरनें धीरे धीरे धूमिल हो कर क्षितिज पर खेलने लगीं। चौखण्डी पर खड़े हो कर जब मोहन ने देखा तो न जाने क्यों वह एकदम निस्तब्ध रह गया। नीचे खड़ी बरूचा ने उसका एकाएक परिवर्तन देखा और पुकार कर हँसते हुए कहा—'ओ गौतम बुद्ध! नीचे आ जाओ जल्दी। कहीं इस जगह गश आ गया तो मैं क्या करूँगी यहाँ?'

किन्तु मोहन गम्भीर खड़ा था। आज यशोधरा की आवाज उसकी कानों तक नहीं पहुँची। बरूचा थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करती रही किन्तु जब साँझ की वह नीरव उदासी धीरे धीरे कोलाहल की संधियों को मूँदने लगी तब हठात् उसके हृदय में एक भय उत्पन्न हुआ।

दूर दूर तक खेत फैले हुए थे। उनमें एक ही रंग था किन्तु उस हरे के भी इतने अधिक भेद थे कि उनका प्रत्येक में एक भिन्न स्वरूप था जैसे अन्तराल के स्तरों में हिलती हुई वायु के कारण आकाश के अनेक छायाभेद दिखायी देते हैं। मोहन ने चारों ओर

देखा। वे खेत के टुकड़े टुकड़े हो कर भी इस समय एक बड़े फर्श के सामने फैले हुए थे।

बरूचा ने चिल्लाकर कहा—'नहीं आओगे ? क्या है ऐसा वहाँ ?'

मोहन ने उत्तर दिया—'एक बार ऊपर आकर देखो न ? जो मन का विचार है वह यहाँ भाषा को कुण्ठित पा रहा है न जाने क्यों कुछ बड़ा अजीब अजीब सा लग रहा है।'

बरूचा ने एक बार विचलित दृष्टि से इधर उधर देखा। उसे लगा कि सौन्दर्य का स्वप्न जिसके त्रिकोण में केवल उसी का एकमात्र आकार निहित है अब बीच के बिन्दु में उल्कापात बन कर गिर गया है और उस त्रिकोण का चतुष्कोण, कोण कि अगन कोण, कि बिन्दु संघट्ट हो कर एक निराकार प्रसार हो जायेगा और जो मोहन आज तक भटका नहीं है वह अब दर दर की खाक छानेगा क्योंकि बंधनों की कड़ाई कलाई को खाने लगी है जैसे उसके लोहे के दाँत हों...

ताँगे वाला उधर मुँह किये आगे फैल गया था। घोड़ा सामने पड़ी घास में मुँह डाल कर उसे धीरे धीरे चबा रहा था।

बरूचा टीले पर चढ़ते चढ़ते हाँफ गयी। उसके गोरे गालों पर लाली की तमतमाहट छा गयी जैसे सुदूर क्षितिज के सामने किसी ने दर्पण उठा कर रख दिया हो। मोहन अब एक बारगी फिर तन्मय हो कर कुछ सोच रहा था। बरूचा की साँस फूल रही थी। किन्तु उसने हँस कर कहा—'क्या देख रहे हो ? आज लगत है तुम मुझे बिलकुल भूल गये हो।'

अवसाद की छाया में किसके पैरों की चाप है जिसे पुरुष की

अहमन्यता सुनना नहीं चाहती क्योंकि उस चाप में उन नूपुरों का घोर हाहाकार है जिसमें स्फटिक सा जमा हुआ अभिमान पानी पानी होकर बहने लगता है और अभिमानी चट्टान समझ कर लहरों के साँप पकड़ने लगता है।

उसने मोहन के सामने खीझ कर कहा, 'क्यों? क्या हो गया तुम्हें? बोलते क्यों नहीं?'

किन्तु वह खीझ भी व्यर्थ हो गयी। आज वह नहीं मनायेगा। क्योंकि उसके सामने शायद इसका मूल्य ही नहीं रहा है।

बरूचा उद्भ्रांत सी पीछे हटकर पत्थर पर बैठ गयी। चौखण्डी की उन उच्च पलकों में जैसे दो सपने थे और दोनों ही इस समय घबरा गये थे।

मोहन ने मुड़कर देखा। बरूचा दोनों हाथों में मुँह लिये सिर झुकाये बैठी थी। वह थक गयी थी। उसे मोहन ने आज कोई दुलार नहीं दिया है अतः अपने अधिकारों में वह कुछ कमी पा रही है।

नीरव आकाश उस समय धीरे धीरे धुँधला हो चला था। अँधेरे का तीर दनदनाता हुआ बढ़ा आ रहा था। अब वह आकर पृथ्वी के वक्षस्थल में गड़ जायेगा और वेदना से धरती बेहोश हो जायगी।

भूला हुआ समीरण दूर दूर की कराहों का निस्तब्ध सन्निपात बना तड़प रहा था। मोहन को लगा जैसे युग युग से जो समीर की चेतना घायल होकर बह रही थी वही आज फिर काँप रही है।

और मोहन ने कहा—'बेबी'!

बरूचा ने सिर नहीं उठाया। केवल आँखों ने ही प्रश्न बन कर

पुतलियों को उठा दिया। उसमें कुछ गर्व है किन्तु वह नाव की तरह डाँवाडोल हो रहा है।

मोहन ने ही कहा—'कितना प्रशांत है यह स्थान। हम जिस जीवन में रहते हैं क्या उसमें कभी इसकी छाया भी पड़ती है। तुम कहोगी यह पलायनवाद है ? ऊँ ?'

बरूचा सुनती रही। उसके मन में आया हँस दे। बन रहे हैं आज जनाब ! गोया जैसे गौतम बुद्ध ही हों।

पर मन तो सोच रहा है, जीभ क्यों तालू से सटी जा रही है। वह नहीं बोलेगी अब। किन्तु मन का उफान जब वास्तविक जीवन के चूल्हे में फेन बन कर जब गिरता है तब चमड़ा जलने की सी बदबू आती है।

बरूचा खड़ी हो गयी। मोहन ने कहा एक बार सोचो, ढाई हजार साल से भी पहले एक दिन गौतम ने यहाँ आकर अपना पहला उपदेश दिया था और एक दिन संसार काँप उठा था। मेरा मन काँप रहा है जैसे आज फिर।

देर तक दोनों खड़े रहे। उनको लगा कि अब और कोई नहीं है। तपस्तप्त गौतम ने हाथ उठाकर अभयमुद्रा में उपदेश देना प्रारम्भ किया है। उस समय भी काशी में प्रकाण्ड पांडित्य है, ब्राह्मण कर्मकाण्डों में हत्या कर रहे हैं और क्षत्रियों में मानसिक असन्तोष फैल रहा है क्योंकि अधिकारहीन को आज वह चाहिये जिसे निर्वाण के छल में वह केवल अपनी भौतिक स्वतन्त्रता नहीं कहना चाहता।

ताँगे वाला ऊब रहा था। उसने बड़बड़ाना शुरू किया—'बाबूजी !'

मोहन ने नहीं सुना। बरूचा ने ही कहा—'चलोगे कि यहीं सो रहोगे। बाज़ आयी मैं तो। पाँच बजते ही म्यूज़ियम बन्द हो जायेगा फिर चिल्लाना यहीं खड़े होकर और दोष देना मुझे। अच्छा ? मैं कहती हूँ, सुना ?'

मोहन को एक कोफ्त हुई। उसने कहा—'तो चलो न ? तुम आयी ही क्यों ? तस्वीरें देख लेतीं सारनाथ की।' फिर समन्वय करते हुए कहा, 'जब ऐसी जगह आते हैं तब कुछ वर्तमान और अतीत की सजग चोटें होती हैं और मनुष्य कुछ देरतक सोचने के लिए मजबूर हो जाता है।'

दोनों उतर आये नीचे। ताँगा चल पड़ा।

बरूचा सोच रही थी पांडिचेरी में योगी अरविन्द है। वहाँ लोग अंग्रेजी न सीखकर फ्रेंच सीखते हैं।

मोहन सोच रहा था—कैसा होगा यहाँ का वातावरण जब उन पाँच भिक्षुओं ने अविश्वास से गौतम को देखा होगा और अन्त में पराजित होकर झुका लिया होगा अपना सिर...किन्तु बरूचा के साथ और गोआ की वह रात जब अलफोंसो आम खाये थे। आम हिन्दुस्तान के हैं नाम स्पेन के राजा का है। क्या जमाना है।

पोर्चुगाल में लड़ाई में सरकार की तरफ से जुए हुए, लाखों कमाये गये, होता कोई ड्यूमा तो फिर लिखता, किसी यहूदी लड़की को अबके नायिका बनाता, वह अकेली...एक प्रेमी...हिट-लर की बर्बरता...।

राह के वे उनींदे उनींदे वृक्ष।

एक अँगड़ाई न ले ले आकाश।

बरूचा का हाथ मोहन के कंधे पर है। हाथ के नीचे मांस की पेशी है जैसे यह मांस का टुकड़ा जीवन के विस्तार में एक छोटी परिधि का केन्द्र है। नहीं है। होगी क्यों। नहीं ही होगा...

दूर दूर तक फैले हुए खेत। मोहन के अधखुले नेत्र। छाया हो रही है। कैसी मादक तन्द्रा भिक्षुओं ने आँख फाड़ कर नहीं देखा होगा ? तर्क के कुठार मारे होंगे, जीत गये गौतम।

जीत या हार ? क्या महापुरुषों में भी जय का संतोष होता होगा ? गांधी नहीं जानता होगा—उसके पीछे हजारों आदमी हैं जो उसे अपना नेता समझते हैं।

अतः मनुष्य की तृष्णा...प्रसिद्धि...जिसके शव के लिये जीवन का कफ़न...।

कितना भीषण विष है यह इतिहास, जिसमें और कुछ नहीं केवल नादानियों का भण्डार है, मनुष्य की अबूझ निर्बलताओं का, जिनका शृंखलाबद्ध रूप कहानी का सा एक दुखद प्रवाह है।

मोहन ने कहा—'बेबी। तुम्हें कुछ नहीं लगा ?'

बेबी ने मुसकरा कर व्यंग से कहा—'मुझे बुद्धजी मिले थे। कहते थे—बेबी तुम बहुत बुरी लड़की हो'...फिर अंगरेज़ी में कहा 'क्योंकि तुम मोहन से ब्याह करना चाहती हो और विवाह विराग नहीं है, मोह है, इन्द्रियों का सुख है...'

वह हँस पड़ी। ताँगेवाले ने अंदाज़ से सोचा कि ज़रूर कोई बुरी या गन्दी बात कही है तभी अंगरेज़ी की टाँग तोड़ी है...।

मोहन को झटका लगा। हृदय की गति जैसे क्षण भर को स्तब्ध हो जायगी। उसने भय से बरूचा का हाथ पकड़ लिया।

जिस दिन के लिये सारे जीवन का मोह है, वही क्या इतना बड़ा कल्मष है ।

कितना अच्छा है वह त्याग जो करना नहीं पड़ता । भले ही बुद्ध का यश न मिले । उसे लगा जैसे बुद्ध का सौम्य रूप ही विराट अन्धकार बन कर उस पर हुमक हुमक कर रहा था और वह दोनों हाथों से बेबी को छाती से चिपकाये, बिखरे बालों से, प्रतीक्षा कर रहा था कि यह तूफ़ान ऊपर ही ऊपर से निकल जाये ।

कड़वाहट फैल गयी । बेबी का उपहास एक भयानक सा तीर बन गया पास खड़े होकर तो उसने अभीतक कुछ भी न देखा था ।

हम विवाह करेंगे । अमिताभ गौतम महान था । उसने जीवन में त्याग का रूप दिखाया था ।

आर्य्य सत्योंका जय निनाद हुआ आगे बढ़ कर चीवरधारी अमिताभ के सामने मोहन ने कहा, बुद्ध शरणं धर्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि ।

गौतम के नयन नहीं हिले । गंभीर स्वर में उन्हों ने कहा, सद्धर्म की जय हो । विहार में आनेवाले कुमार । तेरे साथ यह कौन है ?

मोहन ने कहा, बेबी है तथागत ।

बेबी ? अमिताभ ने मुड़ कर कहा, आनन्द ! यह ललना आर्य्यावर्त्त की नहीं प्रतीत होती ।

आनन्द ने कहा, प्रभु ! यह यह ललना भ्रम है, माया का दुस्तर स्वरूप है ।

बेबी ने अंगरेजी में कहा, मोहन ! भगवान ने क्या कहा ?

ओह, वेट कह कर मोहन ने फिर कहा, अमिताभ । यह

स्त्री आर्य्यदेश की करुणा का [illegible] है। एक दिन सैकड़ों बरस पहले इसके पूर्वज ज़रतुष्ट्र के उपासक होने के कारण ईरान से निकाल दिये गये थे। वे यहाँ समुद्र तीर पर आकर बस गये। यह उन्हीं की सन्तति है। आजतक हम आर्यों ने कभी परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं किये। आज मैं जाति बन्धन तोड़ देना चाहता हूँ।

आनन्द ने कहा—कौन से भारत की प्रजा हो ? सम्राट अजातशत्रु की अथवा सम्राट् जार्ज षष्ठ के अंगरेज़ी भारत की ?

बेबी ने काट कर कहा, हम प्रजा नहीं हैं, हम सम्राट् अम्राट नहीं मानते। हम जनता हैं।

मोहन ने मन ही मन कहा, बहुत अच्छे ! शाबाश। फिर बेबी की ओर दिलासा देते हुए कहा—ठीक है।

बेबी ने फिर कहा, हम भूखों के लिये लड़ते हैं, हम आज़ादी के लिये लड़ते हैं। हम नहीं चाहते कि हम गुलाम रहें...

तो क्या तुम दोनों दास हो ? भगवान बुद्ध ने हठात् प्रश्न किया।

मन से तो नहीं हैं, बेबी ने कहा—हम इस बर्बर साम्राज्य का ध्वंस करना चाहते हैं...।

नहीं आनन्द भगवान ने काट कर कहा, दास को परिव्रज्या मत दो।

आकाश और पृथ्वी एक हो गये। दास दास रह गये। भगवान और आनन्द नहीं रहे। मोहन ने बरूचा का हाथ दाब कर कहा, 'एक बात याद आ गयी।'

बेबी ने कहा, 'सुननी पड़ेगी ?'

मोहन हँसा, कहा,—'शैतान ?'

फिर दोनों जोर से खिलखिला कर हँस पड़े। ताँगे वाले ने कहा, 'धीरे...अबे धीरे...'

घोड़ा धीरे चलने लगा।

× × ×

बरूचा सरक कर बैठ गयी। अब सड़क सपाट हो गयी। मोहन ने कहा, 'वास्तविक जीवन की कठोरताओं में हमें यह सुयोग कभी नहीं मिलता।'

'खाने पीनेवाले की बात है'—बरूचा ने धीरे से कहा, 'जो किसान इस चौखंडी के चारों ओर खेतों में हल चलाता है उसे इसकी ऐतिहासिकता का कितना ज्ञान, ध्यान है ? बताओ न कि वह अपने बारे में, अपनी स्त्री बच्चों के विषय में, अधिक सोचता है या अपने देश के गौरव की ?'

मोहन के दिल को चोट लगी। कितनी कठोर बात है ? सच ही तो है। उस किसान की सारी बुद्धि उसी के खेत में जोत दी गयी है। जिस तरह पुराने कायदे के हल के कारण पैदावार कम होती है उसी भाँति इसकी बुद्धि के दो बालें ही निकलती हैं—एक जिन्दा रहना, दूसरी में जिन्दगी को जिन्दगी न समझ कर केवल घिसटते जाना।

उसे लगा हृदय विक्षोभ से फट जायेगा। यह क्या सोच रहा है ? लेकिन बेबी के दिमाग में तो अब भी यही बात है। वह मुझे प्यार कर सकती है। एक क्षण के लिये भी उसे यह अनुभव नहीं होता कि मोहन से आलिंगन करना भी एक पाप है। उसकी दृष्टि में पाप है। पर वह पाप की परिभाषा दूसरी है। यह जो चौखंडी

के पत्थर खड़े हैं उन में अपढ़ पड़ोसी देवता का निवास समझने लगे हैं, इसे ही वह पाप कहती है।

मोहन ने उदार चित्त से कहा—हे! हरिणराज बोधिसत्व। तुम पशु होकर भी मनुष्य से अधिक बुद्धिमान थे, फिर क्यों आज मनुष्य पशु से भी अधिक मूर्ख होने के लिये बाध्य किया गया है?

एकाएक वह हँस दिया। वह बेबी के उस विचार की ओर मुड़ा कि यदि हिरन बेखटके छोड़ दिये जायें तो वह मनुष्य की सारी खेती खा जायें।

बेबी चौंकी। कहा, 'क्यों हँस रहे हो?'

'यों ही।'

'हाय रे!' बरूचा ने दोनों हाथ जोड़ कर कहा, 'अब तो ये योंही हँसने लगे। कहीं मुझे यशोधरा की तरह छोड़ न जायें।

मोहन प्रसन्न। बेबी फिर एक बच्चे की सी मुस्कान से काँपती हुई। सब बहुत अच्छा है। मनुष्य की ममता ही इस सब में एकत्व की भावना का प्रतीक है। यह जो पत्थरों को जाग्रत रख-कर इनसे कुछ सुनने का प्रयत्न किया गया है, ममता ही तो है। क्या इस ममता में अमरत्व का लोभ नहीं है? क्या विश्व चेतना का यह द्वार किसी आलोक प्रवेश के लिये ही नहीं है?

बेबी को भय है। उस भय के पीछे सुख की निहित अभिलाषा है और इसी से और भी अधिक तीव्र है कि चारों ओर दुख ही दुख है। और जैसे मैं डूब रही हूँ, सारा मानव समाज घृणा की लहरों में डूब रहा है, तू अपने प्यार की लकड़ी का तख्ता मुझे दे दे, मैं इसे पकड़ कर यह भवसागर पार करने का प्रयत्न करूँगी।

मोहन मौन हो गया। आँखें फाड़ कर देखा। चारों ओर उजाला है। धूप का हलका उज्वल स्वरूप सामने है, पेड़ों की छाया है, हवा ठण्डी है, बेबी का गुदाज़ बदन है, ताँगेवाले की हड्डियाँ उभरी हुई हैं, ताँगे का घोड़ा चल रहा है, सब हैं, पर सब ऐसे नहीं हैं जैसे होने चाहिये थे, सब भयाक्रांत से, भय ही जिनकी आस्था बन गया है......जैसे एक दिन मौर्य्य सम्राट् ने पाशविक बल को धर्म बल, भेरिघोष को धर्मघोष और विहार-यात्रा को धर्मयात्रा से बदला था। राजधर्म उसकी शक्ति बन गया। धर्म की शक्ति राज बनकर फैल गयी, स्थिर बनी रही, और राज के लिये ब्राह्मणों के स्थान पर बौद्धों ने सम्राट् के सामने सिर झुकाया फिर......

अतिरंजित हो गयी कुछ यह कहानी, मोहन ने मन ही मन सोचा। जब वे लोग यही सब सोच सके थे तो उन्हें उन्हींके पैमानों से जाँचना पड़ेगा। आज के परिमाण कुछ भारी हो जायेंगे।

और बेबी की खाकी आँखें; ऐसे बैठी हैं जैसे डोंगरे का बालामृत का बच्चा......

मोहन ने अपने मुँह के सामने हाथ रखकर एक जँभाई ली। अर्थात् कुछ टकराहट थम गई है।

उसने कहा, 'बेबी ! तुमने एक बात देखी ? चौखण्डी में कुछ खास बात !'

बेबी ने कहा, 'बीचोबीच के कूएँ की कहते हो ?'

'नहीं जी,' मोहन ने काट कर कहा—'दीवारों पर लोग अपने नाम क्यों लिख जाते हैं ?'

'इसीलिये कि और कहीं निकलता नहीं। जिसे लोग गौरव की वस्तु समझते हैं उससे अपने आपको निकट करना चाहते हैं...'

बेबी हँसी। मोहन भी।

मोहन सोचने लगा जीवन क्या उस समय भी इतना ही कठोर नहीं लगता होगा ?

उसने देखा दूर दो काषाय पहने नम्रमुख भिक्षु चले जा रहे थे। जाने क्यों हृदय को एक बार कुछ संतोष सा हुआ। बहुत अच्छा लगा। एक युग युग की अबाध धारा आँखों के सामने से गुजर गयी। एक दिन रहा होगा जब इन्हें देख कर सभ्य संसार अपना सिर झुका देता होगा। 'होगा', 'था' में बदल गया। यह कालिक परिवर्तन था। तब इनकी वाणी सुन कर मनुष्य अपने आपको धन्य समझता था। आज भी वह सुनता है किन्तु यदि भय नहीं है तो ज्ञान इनकी सत्ता पर प्रश्न क्यों करता है।

मोहन ने कहा—'यह हम लोगों में विदेशी छाया है। हम अपने आपको सदा के लिये भूल जाना चाहते हैं। यदि सभी मनुष्य इतने सहनशील और सौम्य हो जायें तो संसार में यह दुख ही क्यों रहे ? किन्तु दुख की आस्तिकता में जो अनात्म पल-कर बढ़ा है, वह क्या अपने ही आधारों पर प्रहार कर सकेगा ?' और फिर याद आया।

यही भिक्षु एक दिन साधारण मनुष्यों की भाँति एक दूसरे मनुष्य से लड़े थे जो अपने आपको ब्राह्मण कहते थे।

सिन्धु अरब सागर की बजाय बंगाल की खाड़ी की तरफ चली, गंगा अरब सागर की ओर, दोनों टकरा गयीं। सारे आर्यावर्त्त में भीषण जलप्लावन हुआ और उस समय के देशों

की सन्तान इस समय भी है किन्तु न वे प्रभु कहते हैं, न भन्ते।

मोहन के मुख से एक शब्द निकला—'बेबी।'

बेबी कुछ ऊँघ सी रही थी। स्वर कानों के पर्दे पर अटक गया और वया के घोसलों की तरह लटकते इयरिंग हिल गये।

सड़क पर कुछ गाँववाले जा रहे थे। मोहन उन जैसा नहीं है, बेबी उन औरतों जैसी नहीं है, दोनों के दो दो रूप हैं। उस युगल में उनकी पहचान उनकी अपनी मनुष्यता की माप है जिसे यह दोनों भारतीय मध्ययुग के सामंतवादी स्वरूप का दलित आकार कहेंगे और जो दोनों में एक सामंजस्य है वह आपस की गुलामी का एक तार है, जो निरन्तर बज रहा है, जैसे इतिहास की विराट वीणा पर आज फिर समुद्रगुप्त जैसे विजयी की उँगलियाँ चल कर वह स्वर गुँजा रही हैं जिसकी कोई भाषा नहीं है, जो स्वर मात्र है, जिसकी स्थिरता जिसकी गति है और फिर गति में एक लचक है...

मोहन ने व्याकुल होकर देखा। शोषण के दो रूप हैं। एक के हाथ में देवत्व है पर उसकी पहचान नहीं, दूसरे में अपना दर्द है, अपने के साथ साथ उस गाँववाले के दुख का भी दर्द समाया हुआ पिंजरे में से बोल रहा है, छटपटा रहा है।

मोहन ने देखा दूर चौखण्डी खड़ी है वह ऐसे ही खड़ी रहेगी। शताब्दियाँ बीत जायेंगी किन्तु फिर भी कारवाँ की तरह चलता मनुष्य एक न एक बार उसकी ओर मुड़कर अवश्य देखेगा। प्रत्येक शताब्दी में एक अहंकार है, मनुष्य का वैमनस्य उसे आजतक एक दूसरे के ध्वंस की शक्ति देता रहा है क्योंकि उसे यही नहीं मालूम था कि वह जी जो रहा है, क्या यह पुण्य है अथवा

पाप ? क्या इस निरवधि उपहास की कोई सीमा भी है जो वह कहीं जाना चाहता है, पर जा नहीं सकता क्योंकि उसके हाथ बँधे हैं, पैर बँधे हैं, और सबसे ऊपर भाषाओं की तरह विभिन्न होकर मन भी बँध गया है।

मन में आया वह चिल्ला उठे और उस विराट गौतम की पाषाण की मूर्ति की भाँति उसका स्वर उठ जाये। भय की आक्रांत वेदना में न जाने किस तिमिर का इतना इतना उद्वेग है कि नीरवता में कोई प्रफुल्लता नहीं। क्या प्रफुल्लमना परिस्थिति केवल तृष्णा है जो मनुष्य को व्याकुल करके पराजित कर देती है ?

और मोहन उत्तर नहीं पाता क्योंकि वह एक कर्मचारी मात्र ही तो है इस दलित भारत में अंगरेजों का, जिनके भिक्षुत्व पर फिर एक सम्राटत्व है। किन्तु क्या इतिहास की भूलों को ठीक करके फिर उन पर नहीं चला जा सकता ? उनको फिर प्रयोग में नहीं लाया जा सकता ?

बेबी बैठी है। होगी कोई चिरंतन छाया। उसे तो यह सोच है कि क्या वह दुख भी कोई दुख है कि मन नहीं भरता। यदि सब का पेट भर जाये तो क्या मन भी भर जायेगा ?

उत्तर है—नहीं।

कुछ का पेट भरा है, बहुतों का नहीं।

जिसका पेट भरा है उसका मन नहीं भरा। जिसका पेट नहीं भरा उसे मन भरने की फुर्सत नहीं है। न उसके पास मशीन है, न पूँजी की चिन्ता करने की ही उसे आवश्यकता रही है।

तो क्या जिसका पेट भरा है वह आगे बढ़ता जाये ? बढ़ेगा कौन ?

व्यक्ति या समाज ? व्यक्ति या समाज ?

घोर अट्टाहास है यह इतिहास मनुष्य की आततायी वासना का।

मोहन बेबी की ओर देख रहा है, बेबी आकाश की ओर, आकाश वहीं नहीं, वही अनन्त तड़पन, सिर में दर्द, और युग एक लेप चाहता है, और सारनाथ का खण्डहर पूछता है...क्या तुम रक्त की बात कहते हो ?

गौतम की शपथ, मोहन निरपराध है ?

मत कहो कि मनुष्य का निर्वाण उसके पास से खो गया है। पिता से पुत्र की परम्परा भी तो दीपक से दीपक का आलोक है।

वेदना से मन जर्जर हो रहा है। आज जब संसार में इतनी हलचल मच रही है तब क्या सोच रहा है यह मोहन ? क्या उसे एक क्षण भी अतीत की ओर देखने का अवकाश है ?

'है' आश्वासन का गम्भीर स्वर बोल उठा है—निस्सन्देह ही है।

मनुष्य अपनी पीढ़ी में अपना आदि और अन्त बाँधे नहीं खड़ा था और होगा के बीच की एक कड़ी मात्र जो उसका 'है' है उसको वह काट कर नहीं रख सकता जैसे जड़ और चोटी के बीच के बोधिवृक्ष के तने को अकेला नहीं काटा जा सकता, जैसे बहते हुए महानद की प्रत्येक लहर एक दूसरे से गुँथी हुई है और समय भी इन्हीं लहरों के समान है, जिसकी धारा में सब कुछ बहा जा रहा है किन्तु उठा कर देखने का प्रयत्न करो, केवल तरलता, जिसमें क्रान्ति की आग पड़ते ही वह भी नहीं रहती और केवल हवा......हवा......भँवर मारती हवा ही वात्याचक्र बन कर घूमने लगती है।

मोहन ने कहा—'बेबी ! न जाने क्यों मैं व्याकुल हो उठा हूँ ।'

बेबी को भय नहीं हुआ। उसने विश्वास से हाथ पकड़ कर कहा—'खंडहर देखते समय यह न भूलो कि तुम खंडहर नहीं हो। जितनी वास्तविकता आज है उतनी ही उस दिन भी अपने अलग रूप में रही होगी। उसमें तिनके की तरह न बहो।'

किन्तु, मोहन सोचता है, यह पत्थर की मूर्तियाँ तिनकों की तरह बह कर हमारे पास आई हैं या भारी जहाज़ी बेड़े की तरह डूब गई थीं और हमने उन्हें निकाल लिया है।

बेबी यानी बरूचा ने तिनक कर कहा, 'लगता है कुछ सोच ही रहे हो ? मुझे तुम्हें गम्भीर देख कर शंका हो रही है।'

मोहन ने हँस कर कहा—'यह शंका ही तो विश्वास का अनात्म है।'

सारनाथ के खंडहर जैसे कराह उठे। मोहन हँस रहा था।

२

ताँगा रुक गया। दोनों उतर गये मोहन ने आगे बढ़कर कहा—'म्यूज़ियम।'

बरूचा मुसकरायी।

घूम घूमकर वे बरामदे में रखे प्रस्तर खंडों को देखते रहे। मोहन का हृदय पराजित हो रहा था। पत्थरों की उन अप्रतिम छलनाओं को देखकर लगा हृदय की गति एकबारगी रुक जायेगी। किसी के हाथ का कौशल यदि शताब्दियों तक जीवित रह सकता है, एटम युग के मनुष्य के हृदय पर भी अपनी सौन्दर्यकृति का वही रहस्यमय प्रभाव डाल सकता है तो यही जीवन की समस्त शक्ति और

वासनाओं का चरम उत्कर्ष है। मनुष्य का जीवन भी इसके सामने क्षणभंगुर तो था ही, अब व्यर्थ लगने लगा है क्योंकि निर्माता का निर्मित से तादात्म्य, प्रथम की हार और द्वितीय की घोर विजय है।

हाथ फिराया। स्पर्श की लोच में एक भी सुख का कंपन नहीं। वेवी के हाथ का स्पर्श एक ओर, समस्त संसार की ऐतिहासिक कला का सौंदर्य एक ओर। शरीर की आदिम पिपासा का केन्द्र तो इन जड़ टुकड़ों में नहीं है। दृष्टि का केन्द्र पत्थर है, पत्थर इतिहास है, तो क्या मनुष्य का इतिहास केवल पाषाण ही है?

शताब्दियों की इस जड़ता का आधार क्या है? एक दिन रहा होगा जब यही पत्थर अपने समस्त अनगढ़ रूप में पहाड़ों में पड़ा रहा होगा। हवा इस पर से बहती होगी। उससे भी सहस्रों वर्ष पूर्व इसका जन्म हुआ होगा। फिर एक दिन प्रभात की शीतल गुहार में किसी ने इसे देखा होगा, उठाया होगा और फिर शिल्पी ने आनन्द विभोर होकर जयनिनाद करते हुए इसमें प्राणों का आवाहन किया होगा। आज वही जड़ता एक चेतना बनकर खड़ी होने का दुस्साहस कर रही है? किन्तु उस दिन तो सुन्दरी ने नयन विस्फारित कर देखा होगा कि अमिताभ! मेरी गोद में भी तेरा जैसा एक अमित आभावाला बालक खेले जो संसार में तेरी ही भाँति आलोक फैला दे। प्रत्येक माता की यह प्रार्थना, यह अधिकारवंचित हाहाकारमयी तृष्णा भी क्या उस पत्थर को सवाक् कर सकती है?

'नहीं'। दीवारों की प्रतिध्वनि मन का मौन बन गयी है। कोई नहीं सवाक् कर सकता। अमिताभ भी शायद अपनी मूर्ति

देखकर लज्जा से पानी पानी हो जाते, क्योंकि अमिताभ का रूप नष्ट हो गया, कलाकार का मन अपने सौन्दर्य की प्रतिकृति गढ़ने लगा और धर्माचार्यों ने क्या किया? गौतम के सत्य को कुचल देनेवालों ने उसकी हड्डियों को जगह जगह बाँट दिया जैसे सम्राट जगह जगह विजय-स्तम्भ बनाते फिरते हैं। मन खट्टा हो गया। वरूचा ने मन्त्र मुग्ध होकर कहा—'कितना सुन्दर है यह सब!'

और उन्होंने देखा कि किसी गहन अन्धकार में कोई शिल्पी बैठा है। हाथ की छेनी चल रही है। उसके मन का रूप धीरे धीरे आकार ग्रहण करता जा रहा है। पाषाण और भक्ति की वासना का सामंजस्य उसकी उपचेतना का सब से बड़ा संवेदक है। सापेक्ष्य रूप का अर्द्ध नग्न नृत्य जिस में अर्द्ध नग्नता केवल वासना को प्रज्वलित करने के लिये ही है और कुछ नहीं, और कुछ नहीं...

पहाड़ों के सामने खड़े हुए यात्री, यदि तू नहीं है तो पहाड़ तेरे लिये नहीं है, किन्तु पहाड़ तो फिर भी है, निरन्तर वही है और बदलता जा रहा है तेरी ही भाँति। किंतु तू तो उसे देख नहीं पाता? सारा संसार जाग उठना चाहता है। अध्यात्मवाद की तपिश में हड्डियाँ आज चटक जाना चाहती हैं क्योंकि बोलते पत्थरों की भूख की मर्य्यादा के लिये मनुष्य एक दिन अपने मनुष्यत्व को पाँवों से कुचलने के लिये तैयार हो गया था और उसने उन्हें अपने जीवन की चरम आसक्ति समझकर, जिसके एक खण्ड को गौतम समझ कर, जिसके एक खण्ड को गौतम बनाया था, उसके दूसरे खण्ड को बन्दीगृह की कठोरतम प्राचीर बनाया।

पाषाणों की इस गरिमा में युगांतर की संस्कृति अप्रतिहत गीत बनकर बही आ रही है।

मोहन सुन रहा है। वाहिनी का तुमुल निनाद, कवि का आवाहन, नारी के नूपुरों का मादक क्वणन, और धर्म का गम्भीर घोष सब आज मौन हो गये हैं। किन्तु इस पत्थर के टुकड़े पर अशोक आता है, कुशाण सम्राट सिर झुकाते हैं, संसार को हिला देनेवाले विराट आंदोलन अपने आप सामने से गुजर जाते हैं।

फिर भी एक प्रश्न है। बेबी समझ सकेगी?

'किन्तु,' मोहन ने बरूचा के कन्धे पकड़ कर कहा—'बेबी! संस्कृति की यह परम्परा हमारे जड़ का अविनश्वर स्वरूप है या हमारी गति का प्रेरक रूप?'

किन्तु दार्शनिक हठात् कुंठित हो गया। पुरुष का प्रश्न लय हो गया क्योंकि बेबी के कंधों पर मोहन को इस स्वच्छन्दता से हाथ रखे देख कर पास खड़ा नौकर मुसकरा रहा था। बेबी ने हाथों को हटा दिया। बेबी के मस्तिष्क में विचार आया—काश वे यूरोप में होते जहाँ स्त्री और पुरुष समुद्र तीर पर नंगा प्रायः घूमते हैं क्योंकि वे स्वतन्त्र हैं, उनके मन स्वतंत्र हैं और स्त्री की जंघाओं में उनके लिये इतना आकर्षण नहीं रह गया है। क्या यह सत्य है कि पौरुष के अप्राकृतिक मेल के कारण नारी को पुरुष की वासना जगाने के लिये वहाँ जंघा तक खोल देनी पड़ती हैं? कितनी उलझन है!

लेकिन आज यूरोप से उन्हें डर लग रहा है। लगता है वहाँ का मनुष्य और कुछ नहीं जानता। रोटी ही उसकी एकमात्र पुकार है। उस भौतिकवाद में वह सब भूले जा रहे हैं। उन्हें

आज कोई लज्जा नहीं है। किन्तु सारनाथ के युग में तो स्त्रियाँ अपने उरोजों को खोले फिरती थीं। कितनी निर्लज्ज रही है हमारी प्राचीन संस्कृति।

तब एक ठोकर लगी। पूर्वजों के प्रति घृणा हो आयी कि जब वे स्वतन्त्र थे तब वे भी उतने ही भयानक रूप से कामुक थे। गणिका को सौन्दर्य की देवी कहने वाले। ओ योगी! आत्मा का धन कहाँ है? क्या तेरे जंगलों में पक्षियों के कोमल मर्मर में मनुष्य का मोक्ष है? किन्तु आत्मा तो किसी में लय नहीं होती। उसका निर्वाण होता है। होता है लय, उधर से दूसरी पुकार आ रही है और मोहन नहीं समझ सका कि बेबी अचानक ही सिहर क्यों उठी।

क्या है हमारी संस्कृति? अस्ति या नास्ति? आत्म या अनात्म। आज जो हिन्दुत्व का गढ़ दृढ़ करने का प्रयास हो रहा है क्या स्वतन्त्र मतों का सिर काट कर सब धड़ मिलाये जा रहे हैं कि पता नहीं कौन शत्रु है कौन मित्र?

यह भेद आज एक भी भेद नहीं लगता क्योंकि जो ज्ञान भेद का कारण है वही लुप्त हो चुका है, उसके कोने मोड़ कर उसे गोल कर दिया गया है और वह लुढ़कता है, लुढ़कता है जैसे ढाल पर गिर गया हो, कोई नहीं जानता कि जैसे जैसे वह नीचे गिरता है उसका वेग बढ़ता जाता है...

और सारनाथ का समस्त वैभव चिल्लाने लगा मानों पराक्रमी सम्राटों का शीश भूमि पर कट कर गिरते समय विजेता की सेना की गर्व से भरी हुंकार फूट निकली हो।

विदेशो और स्वजातीय एक हो सके थे। आज नहीं हो सकते।

एक ही हारेगा या दोनों ही कभी के, कभी के हार चुके हैं। मुझे देख कर हँसो नहीं। एक दिन मैंने भी गौरव देखा है। कौन नहीं करता है, मृगदाव ? एक दिन समस्त एशिया तुम्हारा मुख देखता था किन्तु उस शक्ति का क्या उपालंभ है जिसने ध्वंस की धूलि पर खड़े होकर कहा कि किस आत्मा का वर्णन कर रहे हो ? शक्ति ही उसका मूल है। उसका आधार मनुष्य का विश्वास है ! मनुष्य का विश्वास, क्या उसका भी कोई विश्वास किया जा सकता है ? सदा से प्रत्येक युग में वह अपने को ठीक समझता रहा है और प्रत्येक नवीन पीढ़ी ने घृणा की है, घृणा को भय ने दाबा है, वही श्रद्धा बन गयी है।

बेबी ने उदास स्वर से कहा—'मोहन ! तुम समझते हो यूरोप के एक आदमी का हृदय इन वस्तुओं से इतना ही प्रभावित होगा ?'

'पूर्व और पश्चिम की संस्कृति का भेद क्या है ?' मोहन ने कहा। बेबी ने आँख उठा कर देखा। मोहन ने फिर कहा—'मनुष्य का अज्ञान ही उसकी संस्कृति का गर्व है। वास्तव में मेरा और तेरा कुछ नहीं। जो कुछ सामूहिक मनुष्य ने आज तक उपजाया है वह प्रत्येक मनुष्य की संपत्ति है। यदि कपड़े और भाषा का बन्धन लिया जाये तो वह क्या भारतीय संस्कृति में नहीं, सांस्कृतिक रेखा कहीं नहीं ? पंजाबी पठान के अधिक निकट है द्रविड़ के नहीं ! 'बेबी देर तक एक टक देखती रही। फिर कहा— 'देखो न यह कितना कौशल है ?'

मोहन ने उपेक्षा से कहा, 'किन्तु इस कौशल का भी कोई मोल नहीं। मनुष्य का हृदय घृणित है कुरूप है। अतीत की यह तृष्णा शायद उस बर्बरता की पिपासा है जिसकी ओर वह लौट जाना

चाहता है। मन्दिरों में षड़यन्त्र हो रहे हैं। पत्थरों की तरह की इन सदियों को उखाड़ उखाड़ कर बाहर फेंक दो। आओ इन गड्ढों में चल कर ढूँढ़ें। कौन है वह शिल्पी? सम्राट के सामने सिर झुकाये खड़ा है। कलाकार किसी के सामने आत्मा का सम्मान झुका दे? वह सृजन करने वाला है। वह अनन्त सुख का स्वप्न मनुष्य के लिये सजीव निर्मित करता है। मैं नहीं समझता बेबी, मनुष्य ने भारत में आगे खोज करने का प्रयत्न ही क्यों नहीं किया। जो किया तो यही कि शून्य आकाश में कुछ नहीं है, बताओ इसमें बुलबुल है या कौआ। एक अद्वैतवाद है दूसरा विशिष्टाद्वैतवाद। 'वह कठोरता से हँसा, फिर कहा–'कुछ नहीं है', फिर कहा—'है, हो गयी पूर्व मीमांसा और यह उत्तर मीमांसा।' हँसी फूट निकली। उसने उसी व्यंग से कहा, 'परिनिर्वाण की महत्ता में सिर घुटा दूँ या पुनर्निर्माण के लिये बालों में कंघी फेरना प्रारम्भ कर दूँ।'

बेबी ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—'इतने निष्ठुर न बनो मोहन! आखिर हम किसी सौन्दर्य को देखने आये हैं। लौट कर वही बात कर लेंगे।'

मोहन कुण्ठित हो गया। तो वह चाहती है कि निबाह दिया जाये यहाँ। हाँ, ताली दोनों ही हाथों से बजती है। समझौता भी एक वस्तु है। उसका अपना महत्व है। बेबी आखिर तो स्त्री ही है। कहीं मोहन का यह रूप ही उसकी अन्य विशेषताओं को दबा गया तो? किन्तु मोहन का हृदय नहीं मानता। उसने बेबी का हाथ पकड़ लिया। और उन्होंने एक दूसरे की ओर देखा। भरी भरी आँखों से, कि बस पूछो मत।

मोहन सिद्धार्थ नहीं है, बेबी यशोधरा नहीं है। देखने को वही दृश्य लगता है। बस इनके कपड़े बदलवाने की देर है। और फिर हुआ एक स्पंदन। मरते हुए आदमी की जैसे साँस फिर से चलने का यत्न कर रही हो।

'एक दिन इस द्वार-शाखा के नीचे से किसी सम्राट का आकार निकला होगा। बेबी ! यह मैं क्या देख रहा हूँ। मेरा मन आज फट जाना चाहता है।'

संसार में कितने ऐसे आदमी हैं जिनका मन फटता है। माँ के सामने बच्चे का खून होता है, विधवा को सामने करके उससे बलात्कार किया जाता है...फिर भी बने रहने की लालसा जीवित रहती है जैसे अपमानित पत्थर हों, जैसे यह करोड़ करोड़ जनता केवल किसी संस्कृति का खण्डहर बनकर बची रह गयी है, अपने आप में अर्द्ध मूर्छित, बौरायी सी...

'देखते हो यह सुहावटी ?' बेबी ने कहा—'क्षान्तिवादी नामक तपस्वी के रूप में बुद्ध अपने उक्त पूर्वजन्म में बनारस के राजा कलाबू की स्त्रियों को सन्तोष का उपदेश सुनाकर उन्हें भिक्षुणी बना रहे हैं फिर उसी अपराध में उक्त राजा द्वारा उन्होंने अपना हाथ कटवा दिया।'

मोहन हँसा। बिल्कुल ही बर्बरता से कहा, 'कैसी प्रतारणा है। उस राजशक्ति के विरुद्ध उठने का साहस नहीं होता इन लोगों को। बस आत्मा और संतोष खोजने लगते हैं। और बुद्ध ने कहा था—ज्ञान...ज्ञान ही तो जीवन का असन्तोष है...'

और दूर सूखे पेड़ों के पीछे सूरज काँप रहा है। कितना प्रशांत और भव्य है जैसे संतोष का अँधियारा अब उन रंध्रों को

मूँद देगा जिन में से आलोक की ये किरणें भीतर घुसती चली आ रही थीं, घँसती चली आ रही थीं। अब वह द्वार सदा के लिये बन्द हो जाना चाहता है। संध्या का यह शिथिल नूपरशिंजन झूम रहा है। मोहन हँसा। अच्छा है संध्या ऊँची एड़ी का जूता पहन कर खटखट तो नहीं करती ! वायु के झकोरों में जैसे उलझते हुए यौवन की पुकार है। कितना रहस्य है जो आज के संसार की ठोकर से डरकर एक बार उन पाषाणों के पीछे छिपकर बैठ जाना चाहता है कि कोई फिर घोड़े पर चढ़ कर रूँदने का प्रयत्न न करे।

उफ ! घृणा की कचोट ! 'ओ बेबी !' मोहन पुकार उठा। बेबी ने दूसरा हाथ भी उसके उसी हाथ पर रख दिया। नौकर इस समय शायद बाहर है। तभी कोई चिन्ता नहीं। क्या कभी दुनिया में स्वर्ग का कानून भी चलेगा कि बस और कोई नहीं। हम तुम। किन्तु जब यम ने यमी के खण्डित संयम की वासना को पाप कहा जिसे आज तक सब सुख की चरम सीमा समझते थे तो फिर यह दोनों ऐसे क्या अनोखे हैं जो ?

तब बेबी ने कहा—'मोहन ! एक दिन जो हो चुका है, वही क्या हमारे जीवन का सबसे सुखद चिन्ह है ?'

मोहन इसका उत्तर देना चाहता है पर दे नहीं सकता क्योंकि अपर्याप्ति की यह सुखभावना मन को भयंकर कष्ट देती है, पूछो उससे जो भूखा ही रहता है जिस को कभी यह सोचने का अधिकार नहीं मिला कि वह भी मनुष्य है।

एक ने कहा—हाँ, तो बराबर है।

पर उस साम्य का क्या अर्थ कि तुम सब पत्थर की एक मूर्ति

को समान भाव से देख सकते हो। आँखें पथरा जायेंगी कि पत्थर से कोई किरन न आज तक कभी फूटी है, न फूट ही सकेगी।

अज्ञान का भयानक अजदहा जिस तरह सदियों पहले मनुष्य को चबा रहा था आज भी उसी तरह चबा रहा है। किन्तु आज एक सब से बड़ी बात है। मनुष्य का ज्ञान आज एक घोर अज्ञान के बल पर खड़ा है, अगर आज सारे बंधन तोड़कर हम उसे नहीं बचा लेते तो वह सदा के लिये नष्ट हो जायेगा और मनुष्य फिर खोहों में जा छिपेगा क्योंकि फिर प्रकृति का भयानक परशुराम कुठार लेकर उसका ध्वंस करने के लिये उसके पीछे हाथ धोकर पड़ जायेगा।

कोष्ठक में बाँधकर जो सभ्यता के सवालों का कठिन रूप दे दिया गया है उसे बालक समझे तो कैसे? और आगे चलकर तो वह क्या समझेगा जब उसके मस्तिष्क में रूढ़ि के केंचुए चलने लगते हैं, रेंगने लगते हैं।

किन्तु ज्ञान का कष्ट क्या अपने आप में कम है, अपनी अपूर्णता मन को कचोटे क्या यह कम दुख है, और दूसरी ओर यही न मालूम हो कि अभी हम अपूर्ण हैं अतः आगे बढ़ने के स्थान पर वहीं सड़ा जाये, गला जाये। कौन सा पथ अच्छा है। ओ मध्यमा प्रतिपदा के अनुस्वार सम गुंजन! बता दे मैं किसे मर्यादा कहूँ? क्या यही लन्दन का वैभव है, या गाँवों की निर्जीविता। दोनों का सत्य है—समता की अज्ञान छाया। सत्ता के भयानक भेड़िये! अपने आप को फाड़ खाना चाहता है?

वेदना की नश्वरता पुकार रही है। बेबी ने मोहन का हाथ छोड़ दिया। वह मुसकराई। उस मुसकान में एक वैषम्य है, एक

विषाद है। शायद आलिंगन करने की एक चाह है कि शरीर की मांसल कोमलता, एक कठोर दृढ़ता से दबकर फैल जाये और ऊष्मा की तृप्ति अपना घर कर ले।

किन्तु नौकर लौट आया था। संसार का वाह्य व्यापार हो सकता है। दुनिया का काम आंतरिक व्यापार के लिये है पर संस्कृति कहती है कि वह पाप है।

'तुम तो कभी कविता लिखते थे न ?' देवी ने कहा।

मोहन ने कहा—'सच मुझे याद आया। बहुत दिन पहले एक गीत लिखा था जिसका भाव कुछ कुछ याद रह गया है। अब तो वैसी चीजें चाहूँ भी तो नहीं लिख सकता क्योंकि मन का व्यक्तित्व अब न उतना एकांगी है न उसमें इतना दर्प ही शेष है। पर एक दिन जीवन की अवस्था, किसी परिस्थिति की वह सच्ची अनुभूति थी इसी से उसे सुनाता हूँ।'

आज कोई अगम के अतल से ढूँढ़कर प्यार का एक कण लाया है।

आकाश नीली अँगड़ायी ले रहा है। पृथ्वी की पलकें अलसा गयी हैं। ओ अनोखे ! तू मेरी खेया वहाँ ले चल जहाँ कोई विषाद नहीं हो।

जहाँ अनन्त आलिंगन है, जहाँ केवल सुख का चिर स्पंदन है, ओ पागल जहाँ पीली धूप बिछी हो, तू उस सलोनी छाया में मेरी खेया को खे चल।

सागर चरण चूम रहा है, तारिल आकाश छाया करने के लिये चँदवे की तरह टँग गया है, मृदुल समीर का मंथर स्पर्श थरथरा रहा है, चारों ओर यौवन की काया ओजस्वित हो रही है।

अरे मेरे जीवन ! सुन्दरी ने ऊषा में शिथिल पद्म फेंक दिये हैं, जा तू अब भीम वेग से जाकर नवल शतदल ले आ, हे मेरे नाविक ! उस ओर ले चल जहाँ पिपासा का नर्तन गूँज रहा हो।

बेबी हँस दी। उसने कहा—'लेकिन माँझी ! आज समुद्र के सम्मोहन का प्रसार हो रहा है। इसलिये धारा में खेना होगा माँझी ! जहाँ नये शतदल खुल जाने के लिये फड़क रहे हों, जहाँ तिमिर के पगचिह्नों का आलोक मिटा दिया हो, उस नई छाया में चलो माँझी ! केवल फिर गंभीर धारा हो, सिंधु नीर ही ओर और छोर हो जाय, किन्तु एक ही गीत की लय हिलोर में, हे मेरे माँझी ! तू मेरी नाव को खे चल।'

मोहन विस्मित सा सुनता रहा। आह ! आज यह कैसा अश्रुत संगीत अपने समस्त निरावलम्ब आकर्षण से आह्वान दे रहा है। आज मानों भवबंधन तोड़ कर रूप नया आलोक प्राप्त कर जाग उठा है। उसके मुख से निकला—

'आज सत् का चितमय आनंद
बुद्ध जागा है शांत अशोक
आज जड़ जंगम में हो व्याप्त
गूँजता है यह तन्मय गान
मुक्त कर तन के सोये प्राण;
धार लेकर झर झर निर्झर
जगा दे सोये स्वप्न उदार
कि जिनमें वे जीवन के सत्य
मुँदे हैं, खोलें सीधे द्वार,
छोड़ कलुषों की भीषण राह

युगों तक सुन लूँ बस यह गान
आज मिल गये कर्म तन प्राण।'

दोनों फिर चुप हो रहे।

देर तक वे कुछ नहीं बोले। नौकर ने उन्हें देखा। एक बार इधर से उधर गया फिर उधर से इधर आया। किन्तु मौन शायद टूटना नहीं चाहता। निःशब्दता की यह सरलता सबसे बड़ा रहस्य बनना चाह रही है।

वह हटकर खड़ा हो गया।

मोहन ने आँख उठा कर देखा फिर कहा, 'कोई पार क्यों नहीं मिलता? क्यों नहीं मन सोचता वह कुछ पा गया है।'

किन्तु सामंजस्य कहाँ है इस छलना का। कहीं नहीं। इस छेद को जितना ही ढँको उतना ही यह बड़ा होता जाता है क्योंकि इसके नीचे समुद्र का जल है जिसके दबाव को केवल आकाश का सा प्रसार झेल सकता है, साधारण रोक उसके सामने नितांत असफल है। और छेद छेद ही है उसमें से सब कुछ घुसेगा, और डुबाने का ही प्रयत्न करेगा।

एक सरकार है। वह कानून बनाती है कि एक एक हजार रुपये के नोट जिसके पास हैं वे बेकार हैं किन्तु बैंक के मैनेजर उन्हें लाइसेन्स देते हैं हर नोट पर सौ सौ रुपये बनाते हैं...

कौन कहता है कि यह जर्जर कपड़ा सिलने की भी कूवत रखता है। अब नहीं क्योंकि संध्या का अन्धकार अब फिर दूर से चुनौती दे रहा है। सदियों के बाद भी यह समस्या ऐसी ही बनी रहेगी क्योंकि मनुष्य की समस्या कोई न कोई जीवित रही ही आयेगी। उसके बिना मृत्यु है जैसे आज इन खण्डहरों के

पास शिकवे हैं कोई सवाल नहीं। यह कहीं भी रखे जा सकते हैं पटने में या बम्बई में, किन्तु इनको किसी से कुछ नहीं कहना, न ये सुनना चाहते हैं। चाहना तो किसी का भी अपना अधिकार है, पर अधिकार की निर्वीर्य्यता आज फिर कचोट उठी है।

बेबी ने हठात् उसका हाथ पकड़ कर कहा—'ओह, लवली। शृंगार!'

स्त्री की वह अनिंद्य सुंदर खण्डित मूर्ति।

पुरुष की किस घृणित वासना ने इसे खण्डित किया होगा। क्या उसकी जहरीली आँख से पत्थर के उरोज को भी नहीं देखा गया? किस उदासीन तृष्णा का वह भयानक हलाहल होगा कि केवल उसीको तोड़ कर उसे लगा होगा कि अब उस भूख की तृप्ति हो गयी। तृप्ति भी उसकी जिसके प्राकृतिक रूप को पाप कहा गया और लोहे के फलक से पाप मिटाने को फिर एक पाप किया गया।

मोहन काँप उठा। कितना अपमान था। मनुष्य का कैसा घोर पतन था। उसे लगा वह मर कर भी मुक्त नहीं हो सकेगा।

स्त्री और पुरुष युग युग से बद्ध हैं। दासत्व की भीषण पराजय ने उनके हृदय में घोर घृणा के सामंजस्य को रहस्य में परिणत कर दिया है। मोहन ने सोचा—मानों वह आज उस पुरुष का प्रतिनिधि है जो सैकड़ों वर्ष पूर्व इस मूर्ति की अधनंगी स्त्री के सामने खड़ा रहा होगा। स्वामी बन कर, स्त्री को, दासी को, अपनी स्वामिनी कह कर।

लोहा लोहे पर बजना चाहता है।

तुम नग्न हो और मैं भी नग्न हूँ। और हम सारी सृष्टि को

देखकर भय किया करेगा। ज्ञान की कोई भी अवस्था नहीं जब मनुष्य को अपने अतीत की ओर देखने की भी लालसा जाती रहेगी। वह निर्माण के लिये सदा ही गोते मार कर दम घोटने वाले पानी में घुसा करेगा।'

और मोहन ने काट कर कहा—'यही मनुष्य की प्रकृति पर विजय है अन्यथा जो हम आज सोचते हैं वह कभी भी नहीं सोच पाते।'

लगा गौतम के अभिमान का पत्थर अन्तिम बार नहीं, बार बार इसी तरह मनुष्य के इस भय को देखकर हँसा करेगा और मनुष्य प्रतिध्वनि को सुनकर भय से ही आँखें विस्फारित कर देखेगा और जब जब बुद्धि पराजित होगी तब तब वह चीत्कार कर उठेगा—'देव ! तुम महान हो...'

और आज वह महान है जिसने एक दिन महानता की जड़ खोदने को अपना धर्म कहा था, संघ की आड़ ली थी।

मोहन ने कहा—'बेबी ! आज रूप की चेतना से प्राण हार गये हैं। तुम कहोगी मैं अपरूप चिन्तन करता हूँ, पलायनवादी हूँ। मेरे हृदय में यौवन का सा पवित्र तूफान उठ रहा है। लाओ मुझे रूप की वाणी दो, कि रूप गा उठे आज, और मेरी छवि तन्मय होकर उसमें लय हो जाये। आज मैं नग्न रूप का वह अमर रूप देखूँ कि फूल और भ्रमर दोनों मत्त होकर गूँज उठें और कहें—कवि ! आज भी मधु का साज नहीं दे सकोगे ?'

बेबी ने कहा—'उड़ रहे हो अब तुम। अच्छा जरा उतर आओ तो हमारी समझ में भी आये।'

'मैं पूछता हूँ बेबी यदि यह मनुष्य की समस्या नहीं तो वह

इस सबके ऊपर इस रूप में सोच कैसे लेता है ? क्या यह सोचना भी अपने आपको धोखा देना है ?

किंतु बेबी अपनी आँखों में अपने आवाहन का समस्त बल डाले खड़ी थी।

उसने कहा—'जीवन ! मनुष्य का व्यक्तित्व एक चंचल लहर है, उसमें हृदय मछली की तरह बहता है और वह तरंग उसे कभी कभी किनारे पर छटपटाने को छोड़ जाती है फिर अपने में खींच ले जाती है। तब लगता है सब इन्द्रजाल है। और यौवन का खुमार ढलने पर परंपरा के शैशव पर दुलार बढ़ता है तब व्यक्तित्व भिक्षुक के समान हाथ में छिन्न पात्र लिये अतृप्त सा लौट आता है।'

मोहन ने टोंक कर कहा—'नहीं बेबी ! अतीत भी हमारे ज्ञान का मापदण्ड है। हमारे पथ का वसन्त है। इन पाषाणों को चढ़ाने के कारण ही लगता है कि भविष्य में अभी भी कुछ बाकी है। जीवन धनुष है स्त्री प्रत्यंचा है। पुरुष बाण है। स्त्री घर्षण करके, लच कर, पीछे हट कर, टंकार करती है और वह हत्यारे का सा हाहाकार लिये मुक्त भ्रमण करता है।'

नौकर ने आगे बढ़ कर कहा—'आइये बाबू जी ! भीतर के कमरों में देख लीजिये।'

वह उनकी भावुकता को देखकर प्रभावित हो रहा था। उन खंडहरों में वही आते हैं जो पत्थरों से बातें करने का हौसला रखते हैं। उसे तो कभी कुछ नहीं सूझा। उसे रटा हुआ है सब कुछ। वह बड़े गर्व से समझाता है जैसे जो कुछ है वह सब उसी की माया है और उसके मुख पर एक गंभीरता लोटने लगती है।

उसके मन में पहले कुतूहल हुआ फिर उपहास की स्पर्धा और अन्त में वह दब गया था। अनेक भिक्षुओं का सौम्य रूप उसके मन पर एक गहरी छाप डाल चुका है। जब बाहर की दुनिया में आदमी इतनी छीछालेदर करता है, यह लोग कैसे इतने गंभीर रह पाते हैं? कैसे इनकी सारी इच्छाएँ मिट चुकी हैं। वे धीरे धीरे चलते हैं। किन्तु यह दो पथिक जो अभी यहाँ खड़े हैं फिर अभी ही चले जायेंगे कुछ और किस्म के हैं। क्या देखते हैं, पत्थरों को इतना आँखें फाड़ फाड़ कर। और एक वह स्वयं है जो भूखे पेट के कारण ही उन पत्थरों से बँध गया है।

मोहन ने कहा—'बेबी!'

बेबी ने बढ़ कर कहा—'अरे हाँ चलो भीतर देखेंगे।' कैसा बचपन है और मोहन ने मन ही मन सोचा—

इस समस्त वैभव को ले जाने दे क्योंकि संध्या में लूट मच रही है। ओ मन! सूनेपन की इस ज्वाला पर मुसकरा कर इतराना होगा।

नीरवता का ऐश्वर्य है। प्राणों का स्वर गीत बन गया है। ओ यौवन! कल ही तो पतझर है। तुझे फिर हँस हँस कर मुरझाना होगा।

सपने पंखुरियों की भाँति बिखर जाते हैं। वह प्यार कराह उठता है। ओ जीवन! इस भूली हुई मादकता में तुझे फिर से सब कुछ दुहराना पड़ेगा।

मोहन ने देखा। बेबी! टीसों की डगर पर जैसे यौवन चल रहा था।

रूप की ही साम्य ध्वनि से चेतना का राग तुलता है। रूप की लाज से ही हृदय आकुल होकर बिछलने लगता है, रूप प्राण बन जाता है।

३

दिन का पग श्रांत हो गया है। गोधूलि मलिन हो चली है। मेरे पथ के अंचल का पुलिन भी धूममय हो गया है। संध्या की मृदुल मुसकानों में पगचिह्नों से भरे पथ पर पेड़ों में से छनता प्रकाश म्लान वसन हो चुका है। इसका प्रकाश ही अंधकार का विकास हो जायेगा। इसका परिवर्त्तित हुलास नग्न रूप को भर देगा। अनेक टिमटिम करते व्याकुल पिपासित नक्षत्र आकाश में बिखर जायेंगे। सारे अरमान विफल हो कर डूब गये हैं। खेतों के पार प्रतिध्वनि हो रही है। जीवन का श्रांत शिविर सो रहा है। मन में तिमिर व्याप्त है।

कमरे में घुस कर देखा। गाइड ने कहा—'बाबू! यह अशोक का सिंह-शिखर है। देखिये इस पर आज भी कैसी पालिश है। दो हजार से भी ज्यादा बरस बीत गये लेकिन चमक में कोई कमी नहीं। आजकल भी लोग इसे देख कर चक्कर में पड़ जाते हैं।'

कौशल। मोहन ने सोचा। सचमुच इसकी पालिश अद्भुत है जो अभी तक तनिक भी नहीं बिगड़ी। कैसे भव्य सिंह हैं। कितने पुराने जमाने में ही मनुष्य ने कितनी अच्छी चीजें बना ली थीं। और प्राचीनता की स्मृति उसे ले गई मोहिन-जो-दड़ो की ओर, पिरैमिड की ओर। वह तो इससे भी बहुत पुरानी बात है। और

एक ताज भी है। लेकिन अभी उसे बने जुमा जुमा कुल तीन सौ बरस हुए हैं। यह कहाँ? वह कहाँ? ताज किसी के प्रेम की स्मृति है। पिरैमिड किसी की मर कर भी सुख की कल्पना का फल है। और यह सिंह-शिखर? आज गाइड ने केवल अशोक कहा है। क्या वह केवल अशोक ही था? नहीं। उस समय यह कहीं बाहर भटकता और अशोक? वैभव! साम्राज्य!! भिक्षुत्व का अभिमान!! करुणा!!! आकाश के नक्षत्र उसने नहीं तोड़े केवल मनुष्यों का रक्त बहाया था। डाकू ने प्रायश्चित्त किया। उसे क्षमा मिल गयी।

और बेबी ने सिंह-शिखर के सिंहों पर हाथ फेरा और फिर गालों पर हाथ फेरा जैसे उन दोनों में से कौन अधिक चिकना है इसकी तुलना कर रही थी। अचेतना के किसी स्तर में यह नहीं भी हो सकता है। मोहन का विचार क्या कोई अपने आप में ऐसा पूर्ण है?

इसी समय म्यूज़ियम के बाहर मोटर रुकने का शब्द सुनाई दिया।

गाइड ने कान लगा कर सुना, और कहा—'वह देखिये, वह कुषाण, बोधिसत्व है। कुषाणों ने राज किया था—कनिष्क राजा था......'

बेबी ने कहा—'हाँ कनिष्क था, उसका बेटा हुविष्क था।'

गाइड ने बेटे में कोई दिलचस्पी नहीं ली। कौन जाने कौन कनिष्क था। होगा कोई और जब वे कुषाण-बोधिसत्व की विराट मूर्ति को देख ही रहे थे उसी समय एक अधेड़ अंगरेज़ उसकी बीबी, तथा एक पंजाबी परिवार ने भीतर प्रवेश किया। पंजाबी

परिवार उनका मित्र लगता था। पिता के बाल खिचड़ी थे, लड़की भड़कीली रेशमी 'सालवार पहने थी और माता की भौं का गर्व पूरी तरह से तना हुआ था।

पंजाबी वयस्क ने खड़े होकर कहा, 'देखा आपने मिस्टर विली? यह है हमारा प्राचीन गौरव। मैं जब टैक्सिला (तक्षशिला) में खुदाई करा रहा था तब पहली बार मेरी आँखें खुलीं। उफ! पुराने जमाने में आदमी कितना सभ्य था आज उसका दो परसेंट (प्रतिशत) भी नहीं।

'ओह नो (नहीं)' मिसेज विली ने हँस कर कहा—'ऐसा क्यों सोचते हैं आप?'

'मैं आपको बताता हूँ' वयस्क ने आश्चर्य की मुद्रा में कहा—'टैक्सिला की खुदाई में हमने देखा नीचे की इमारत पर ऊपर की इमारत खड़ी है, दोनों की अलग अलग बनावट है...'

'अक......ख......हहह' अजीब तरह से मिसेज़ विली हँसीं। 'न्यूयार्क में आसमान चूमने वाले बड़े बड़े घर हैं।'

उस हँसी के प्रहार से वयस्क का सिर झुक गया, लगा वह बड़े दुख में पड़ गये हैं। उनकी बहुत हानि हुई है और वे चाहते हैं कि कैसे उसे पूरा किया जाय।

मोहन को उनका वह रूप बहुत पसंद आया। बेबी उस पंजाबी लड़की की ओर देख रही थी। अब धीरे से बोली—'यह लड़की है या तितली है। कितने रंगीन तो कपड़े हैं फिर गालों पर इतना भकभूसरा पाउडर, होठों पर इस कदर ललाई और बालों को देखो जरा क्या कहने हैं। कमबख्त! तुझ पर खुदा की मार हो।'

मोहन गले के भीतर ही हँसा। दोनों ने जब मुड़ कर देखा

तो गाइड उन लोगों की सेवा में चला गया था और यह दोनों यों ही रह गये थे। दोनों एक दूसरे की ओर देख कर मुसकराये।

बेबी ने धीरे से कहा—'हम ताँगे में आये हैं। मोटर में आते, सट से उतरते, कैसा रोब रहता, मजा आ जाता...'

मोहन ने कहा—'धीरे बोलो! कोई समझेगा कबाड़िये घुस आये हैं।'

बेबी झेंप गई। किंतु आँखों में शायद वह सपना अभी भी जीवित था कि एक मोटर सर्र से आकर रुकी। बेबी को देख कर गाइड दौड़कर आया...

पंजाबी लड़की किसी बात पर हँस दी थी। माँ सिर्फ मुसकरायी थी। मिस्टर विली कुछ कह रहे थे। मिसेज़ विली और वयस्क पंजाबी गंभीर विस्मित से सुन रहे थे।

मोहन और बेबी को लगा जैसे उनका अपमान हुआ है। वे लोग आगंतुकों की तुलना में कुछ हीन हैं अन्यथा वह इन लोगों को छोड़ कर जाता ही क्यों?

फिर याद आया। गया है क्योंकि इसके पीछे भी एक इतिहास का कठोर स्वरूप है। वही बात यहाँ से जाकर मोहन कह सकता है, किंतु उसका मूल्य उतना नहीं हो सकता जितना मिस्टर विली की बात का। वह गोरा है, उसकी नस्ल लंदन से चलती है, लंदन में हिंदुस्तान के शासक रहते हैं। यह भावना फिर उसी कठोरता की ओर खींचे लिये जा रही है जिसके विरुद्ध अभी तक मन ने संघर्ष किया है, तन घायल हो होकर उठा है। सभ्यता की चरम सीमा अधिकार है। शासन का अधिकार होने से एक के स्वर में बल भरता है, दूसरे का कंठ निर्बल हो जाता है। इस शासन का

बल अधिकारहीनता की एक ऐसी भावना है जो स्वयं उसके मन को कचोट उठती है कि वह बराबर नहीं है। संसार में अनेक राष्ट्र हैं, उनके रहन सहन भाषा, भाव, सब भिन्न भिन्न हैं। तब सभ्यता का माप क्या है ? बड़ी बड़ी बातों पर यह मिस्टर विली भी संभाषण कर सकते हैं और व्यवहार के समय कुछ और ही आचरण इनके आचार को ढँक लेगा। कितना वैषम्य है। कि एक दिन क्लाइव नाम का एक अँगरेज़ आया था। धोखे से सब कुछ उसने इधर का उधर कर दिया। आज वही सब न्याय्य हो गया है। उसके विरुद्ध प्रश्न करने को गांधी हैं, अनेक हैं। किंतु प्रश्न का उत्तर प्रश्नकर्त्ता का लहू है और कुछ नहीं। फिर जातियों में क्यों न रहेगी रक्त की यह घृणित परंपरा ? कब होगा मनुष्य के विश्वबंधुत्व का सपना पूरा। क्या करे मनुष्य ? कितनी उलझी हुई है समस्या उसकी। इतना ज्ञान क्यों सीमित कर लिया है उसने, कि आज वह स्वयं उसके हाथ में कार्य्यकारण के ज्ञात विश्लेषण में केवल एक कठपुतला मात्र रह गया है ?

किंतु फिर उत्तर मिला। जिस दुर्मद अहं का, युगों से विभिन्न संस्कृतियाँ, त्याग करने के लिये इतना घोर प्रयत्न कर रही थीं आज वह स्वयं ही विच्छिन्न हो रहा है। तभी अहं का मोह इस नवीन की व्यष्टि को बुरा कहने लगता है। इस ज्ञान में कितनी कठोरता है कि व्यक्ति परिस्थितियों का दास है। वह और कुछ नहीं। यही तो एक दिन कृष्ण ने कहा था कि तू नियन्ता नहीं है, मात्र निमित्त है। तब जो स्वीकार किया था इसी लिये कि व्यक्तिवाद के ढाँचे को पूरा खड़ा करके फिर उसे कुँठा देने की प्रार्थना की गई थी। आज व्यक्ति का निमित्ति ही उसका नियंतास्वरूप है जो पुराने

आकारों पर हाथ रख कर खड़े होते समय हमारी समझ में आने से इनकार करने लगते हैं। दोनों का संतुलन ही मध्यस्थ बनता है किंतु अबके क्षमा नहीं है, कर्म का प्रतिशोध है, किसी पाप को मिटा डालने की प्रेरणा है। मन की शुद्धि की युगों तक चेष्टा हो चुकी है कि चोरी न करो ? किंतु आज सारे रोमांस का जाल फाड़ कर कहा जाता है—'ऐसा निर्माण करो जिसमें चोरी करने के लिये मनुष्य को विवश ही होना पड़े।'

यह नहीं हो सकता है असत् से ही सत् की भीख ली जाये। वे जो कहते हैं समन्वय ही अपने भीतर से नये सौंदर्य्य को जन्म देता है, वे एक ही प्रत्यय को हर जगह लगा कर अपना काम निकाल लेना चाहते हैं जो असंभव है। क्रान्ति की घोर अपेक्षा से जीवन की निर्बलता बढ़ती है, व्यक्तित्व के भीतर और भी अधिक अंधकार बढ़ता है और फिर मनुष्य पुकार उठता है कि मैं कुछ नहीं हूँ मैं कुछ नहीं हूँ...

किंतु मैं की चट्टान दृढ़ रहती है तभी उसकी भीमकाया से त्राण पाने के लिये संसार का सारा अवसाद हाथ पाँव पटकने लगता है।

'मैं' की दुर्मद शिला को खंड खंड करके पीस दो। जिस दिन वायु में उड़ते कण अपना हाहाकार करना छोड़ देंगे उस दिन जनता का त्रिविक्रम का सा स्वरूप प्रबल शक्ति से एक बन कर हुँकार उठेगा उस दिन ईश्वर और आत्मा, के छोटे आकारों के परे एक ध्वनि गूँजेगी कि हम ही मैं है, हम ही मैं है और शब्दों का खेल मिट जायेगा, क्रिया अपना आलोकित स्वरूप लेकर प्रगट होगी......

बेबी का चेहरा उतर गया था। उसे उस पंजाबी लड़की से घृणा हो रही थी जो सुनने से पहले हँसती है और गर्दन टेढ़ी करके नखरे करती है। उसे लगा सारनाथ के पवित्र खंडहरों का घोर अपमान हो रहा है। फिर विचार आया कि जब यहाँ उन दिनों सामंत लोग आते होंगे तब साधारण व्यक्तियों का यही तो एकमात्र परिणाम होता होगा। ज्यादा से ज्यादा रहमदिली करके उन्होंने मोहन के कंधे पर हाथ रख कर दो सवाल पूछ लिये, मोहन धन्य हो गया। और बेबी यदि पसंद आ गई तो लेकर अंतःपुर में डाल लिया या फिर दो दिन रख कर छोड़ दिया...

उसने मोहन की ओर देखा। देखा वह कितनी असहाय थी। सारे संसार में पुरुष का उस पर घोर अत्याचार है, किंतु सब कुछ सहती है यह स्त्री और उसके सुख की भी चरम कल्पना है सत् पत्नी, वीर प्रसू, किंतु माध्यम होकर सृष्टि चलाने वाली फिर भी तो उस पुरुष के चारों ओर ही अपना संसार बनाती है। क्यों नहीं करती वह अपने ऊपर अत्याचार करने वाले से घृणा क्योंकि एक दिन गौतम ने यशोधरा को घृणित समझ कर छोड़ दिया था और संसार ने यशोधरा की इसीलिये इतनी प्रशंसा की कि वह उस बर्बर के प्रति ही अपने आप को बलिदान दे चुकी थी? क्योंकि है स्त्री इतनी घृणित? और यदि घृणा ही उसके जीवन का एकमात्र कारण है तो क्यों पुरुष उसी को रहस्य कहता है, क्यों वह पुरुष के ही चारों ओर चक्कर काटती है?

क्योंकि स्त्री निस्सहाय है। अपना मानने की परवशता इसी लिये है कि वह भी दो टुकड़ों की दासी है और यदि इस बंधन

को स्वीकार नहीं करती तो उसे समाज का भेड़िया फाड़ कर खा जाये और वह प्रकृति की भूख।

विद्रोह करना जो भूल जाता है उसकी सांस्कृतिक चेतना दूसरों के पैरों के नीचे छटपटाना भी पाप समझती है। प्रयत्न यही रहता है कि कुचलने वाले के पाँव में कोई चोट न आ जाये।

कारण ?

कारण एक ही है। स्त्री और पुरुष का दर्जा समाज में बराबर नहीं है। अपने लाभ को पुरुष ने उसे स्वामिनी कहा है जैसे अंगरेजों ने हिंदुस्तान में अपने अनेक पिट्ठुओं को रायसाहबी और रायबहादुरी बाँटी है।

दोनों में से कोई रहस्य नहीं है। दोनों साधारण हैं। किंतु अपनी व्यवस्था में उन्होंने इतनी उलझन खड़ी कर ली है कि उससे निस्तार पाना उनके लिये असंभव हो गया है।

एक लड़का है, एक लड़की है।

लड़की की आँखों में तृष्णा है कि उसे चूम ले, उसे भींच कर उससे आलिंगन करे, अपने शरीर को प्राकृतिक सुख दे। किंतु क्योंकि यह पाप समझा जाता है वह आत्मा के बंधन का अभिनय करती है, पुरुष कहता है—तुम स्वर्ग की चेतना हो। तुम शरीर के कलुषों से परे हो। स्त्री समझती है यह उसकी विजय है। पुरुष समझता है यह उसकी हार है।

पुरुष का यौवन उससे वही चाहता है। किंतु उसे जब समाज के बंधन जकड़ते हैं। जब वह व्यवस्थाओं के विरुद्ध छटपटाता है तब वह कहता है—स्त्री मायाविनी है। मनुष्य का मोक्ष निरा-

सक्ति है। और स्त्री हारने लगती है। पुरुष का 'योगी अहं' चिंघाड़ उठता है जैसे हाथी को शराब पिला कर मस्त कर दिया हो।

किंतु असंख्य करोड़ गरीब जो कुछ सोच समझ नहीं पाते उनके लिये स्त्री न रहस्य है, न पुरुष एक दुर्भेद्य गढ़। वहाँ स्त्री पुरुष की दासी है, स्त्री को स्वीकृत है, वहाँ यौवन का छल ही उनके जीवन की परंपरा है। वहाँ मन की प्रतारणा नहीं। वहाँ समाज के कार्य्यों में तन्मयता है, काम करना है क्यों कि दोनों की घोर समस्या है रोटी। खाते हैं, पीते हैं, यौन संबंध करते हैं जैसे पशु हैं और पशुत्व का जंजाल हटाने को उन्होंने उच्चवर्ग के सिद्धांत बिना समझे हुए रट लिये हैं, पुरुष है स्त्री के लिये, स्त्री है पुरुष के लिये, क्योंकि यह भी एक भूख है, और बहुत भयानक होने पर भी आवश्यक है, क्यों कि यह जीवन के रसों का एक स्थायी भाव है, सारा वातावरण उसका संचारी मात्र है। पुरुष और स्त्री के प्रेम का साधारण कारण उनके सम्मिलित प्रयत्नों का फल—बच्चा है। यदि स्त्री आत्मा है, पुरुष परमात्मा है, एक प्रकृति है दूसरा पुरुष है, सभी आलय विज्ञान है। प्रतीत्य समुत्पाद नहीं। जिसका हेतु यहाँ परंपरा है वहाँ क्षणिक होते हुए भी समाप्ति पर प्रारंभ नहीं है क्योंकि प्रवाह की च्युति कहीं भी नहीं होती। जहाँ काट करने का प्रयत्न होता है, जो स्वयं जनमता है वहाँ परोक्ष का अंधकार फैलता है। क्योंकि कारण या तो कार्य्य का अंत है या प्रारंभ। मनुष्य का अनुभव उसका ज्ञान है रूढ़ि बनकर वह संस्कार बनता है।

'क्या सोच रही हो?' मोहन ने पूछा।

'कुछ खास नहीं,' कुछ रटी रटी बातें दिमाग में घूमने लगीं।

पंजाबी वयस्क और मिस्टर विली अब भी ऊँची ऊँची बहसें कर रहे थे। एक भारतीय संस्कृति के पीछे पड़ गया था, दूसरा पश्चिमी के। दोनों में वाक्‌युद्ध हो रहा था।

मोहन ने कहा—'चलो बेबी ! भीतर का कमरा देखेंगे।'

भीतर अन्धकवध, शिव की विशाल मूर्त्ति को देखकर बेबी ने कहा—'यह मूर्त्ति देखी तुमने ? तुम्हारा क्या विचार है ?'

मोहन ने कहा—'मुझे अच्छी नहीं लगती, इसके मुँह पर जो दाढ़ी बनाने को यह छोटे छोटे गोले गोले से बनाये गये हैं न जाने क्यों इनको देखकर मैं घृणा से सिहर उठा हूँ।'

बेबी ने चेत कर कहा—'मैं समझती हूँ मनुष्य का यह विचार एक बहुत ही प्रौढ़ स्वरूप है शक्ति की कल्पना का। एक ओर यही शिव इतना भयानक है, दूसरी ओर कितना शांत...'

मोहन हँसा। उसने कहा—'भस्म में से सृष्टि का जन्म होता है, उस जन्म के पीछे फिर संहार है, वह घृणा करता है, संसार का सबसे बड़ा प्रेमी है...कल्पना...कल्पना...सदियों का चिंतन...'

'लेकिन,' बेबी ने काट कर कहा—'यह विचारों की विभिन्नता का परिचायक है। इसके अनुयायियों ने एक समय जाति-बंधन को काफी तोड़ दिया था। मुझे यह इस गौतम के जीवन की एकरूपता से कहीं अधिक रुचता है। दोनों ही आज हमारे लिये कहानी हैं। दोनों ही दिलचस्प हैं। चलोगे नहीं।'

'अरे यह देखो,' मोहन ने झुक कर कहा—'देखो न शीशे के बक्स में। लगता है हाथी दाँत का है। नाखून के बराबर के

पत्थर पर एक बुद्ध और फिर और भी छोटे छोटे बुद्ध वंडरफ़ुल (अद्भुत) ।'

तब बेबी ने वह काले पत्थर का स्त्री का सिर देखा, देखा... फिर देखा...पत्थर...पत्थर...

तब इस सबका प्रयोजन ? यह सब क्यों हुए...क्योंकि इनके माता पिता हुए...क्योंकि...फिर एक रहस्य...वहीं मनुष्य का अज्ञान...और तभी मोहन के हाथ का स्पर्श...इसीलिये तो जीवन है...रहने के लिये...जीते क्यों हैं...क्योंकि मरते नहीं...मर जाने पर...हम जियेंगे नहीं...एक अंधी दौड़...वही ज्ञान...व्यक्ति और समूह...

वह सिहर उठी । उसने कहा—'मोहन ! चलो न ? बाहर भी देखना है न ?'

'ओह यस (अरे हाँ),' मोहन ने कहा और दोनों बाहर की ओर चले । जब वे द्वार के पास पहुँचे विली आदि भीतर घुस रहे थे । उन्होंने इन्हें निकल जाने को रास्ता दिया । पंजाबी लड़की ने टोक कर कहा—'माफ कीजिये । देख लिया आपने ?'

तनिक कुंठा से बेबी ने कहा—'जी हाँ ।' जैसे आपकी इस सहानुभूति से उसके आत्मा को कुछ कष्ट हुआ है । वह इसको कभी नहीं चाहती थी ।

मिस्टर विली ने हँस कर कहा—'पत्थरों की कहानियाँ पढ़ कर क्या अजीब अजीब सा लगता है ? एक बार जब मैं अमेरिका में था मैंने वहाँ की 'माया सभ्यता' के वीरान खंडहर देखे थे । उसमें काफी भारतीयता की छाप थी ।'

पंजाबी वयस्क की बाँछें खिल गईं । हर्ष से गद्गद होकर

कहा—'एक दिन था जब हमारे भारत की संस्कृति से सारा संसार ढँका हुआ था।'

फिर वह ऐसे चुप हो गया जैसे क्या बतायें। अब वह युग नहीं रहा। न जाने किस बेला में उस वैभव और ऐश्वर्य्य ने हमसे आँखें चुरा लीं। और आज तो इन गोरों के हाथ में सारा प्रभुत्व पहुँच गया है।

तब मोहन ने सोचा कि एक दिन जब आर्य्य अभिमान से भर कर खड़े होते थे तब क्या द्रविड़ और दास, सब कुछ समझते हुए भी, उनके सामने ऐसे ही खड़े नहीं होते होंगे, जैसे आज हम इनके सामने खड़े हैं।

बेबी ने बनावटी मुस्कान से कहा—'इतिहास से बढ़कर दुख देनेवाला और कोई नहीं। कभी कोई क्या था और अब क्या है दोनों ही तो कचोटते हैं।'

बात ने प्रभाव नहीं डाला क्योंकि बेबी के मुख पर वैसी भव्य बनावट नहीं विराज सकी जो ऐसे वर्ग के लिये बात करते समय आवश्यक है। और मोहन सोच रहा है कि क्या बेबी ने यह ठीक कहा है? क्या हम लोग वही हैं जो तब थे और क्या हम लोगों के लिये आवश्यक है कि जो वे थे वही हमारे आदर्श बने रहें और हम ऐसे जकड़े खड़े रहें कि न आगे चल सकें न पीछे?

मि० विली ने क्षण भर देखा और फिर वे हठात् मुस्करा कर कह उठे—'इतिहास! इतिहास हमारे दोषों का भंडार है जो अब हम दूर से देखते हैं तो हमें वह सब भी अच्छा और पुनीत प्रतीत होता है।'

पंजाबी लड़की तब व्याकुल सी लग रही थी। उसकी आँखें कभी मोहन की ओर जाती कभी बेबी की ओर। वह शायद यह आँक रही थी कि यह दोनों पति पत्नी हैं, जो लगते नहीं, या भाई बहिन हैं, वह भी नहीं लगते और भारतीय विधानवाद के अनुसार मित्रता ऐसी होती नहीं। फिर ?

लोग ऐसे काम छिप कर किया करते हैं फिर यह खुले आम कैसे ?

उदास मोहन को कोई दिलचस्पी नहीं। विली की ओर मुँह करके पंजाबी वयस्क ने कहा—'लेकिन इतिहास हमें बताता है कि हम क्या हो सकते हैं......।'

'वह राजनीति होती है', हठात् मुँहफट तरीके से बेबी कूद पड़ी कि दूध इधर उधर फैल गया और जैसे दूध गर्म था वह भी उसमें गिर कर छटपटाने लगी।

एक बार तिक्त व्यंग से तनी हुई भवें और तनी हुई दिखाई दीं। माँ ने उपेक्षा से देखा जैसे वह बहुत ऊँची मीनार से गिरते प्राणी को देख रही हों जो निस्संदेह नीचे गिर कर चूर चूर हो जायेगा और उसी समय मिसेज़ विली आगे बढ़ गईं।

एक दुखद प्रसंग छिड़ जाने वाला था। यहाँ वैभव का दासत्व नहीं। चोट पर चोट पड़ने वाली है। अच्छा है बदलते जमाने में उसे जहाँ तक हो टाल दिया जाये। सोलह बरस का होने पर लड़का भी बाप का दोस्त हो जाता है तो हिंदुस्तानी तो डेढ़ सौ बरस का हो चला है।

'ठीक है,' पंजाबी लड़की ने कुछ न समझ कर कहा।

'बिल्कुल ठीक है।' मिस्टर विली ने रही सही बात को टाल दिया।

उस समय नौकर दूसरे नौकर से कह रहा था—'बस, साहब लोगों के देखते ही म्यूज़ियम बंद कर दूँगा।'

जैसे मोहन, और बेबी यहाँ नहीं थे उनको सारनाथ के खंडहर देखने का भी अधिकार न था, अधिकार भी था तो उसका न मूल्य था न महत्त्व, जैसे बाप की जली हुई हड्डियों को आज लड़का बटोर कर उन्हें फूल कहने की कल्पना का भी अधिकारी न था.........

मोहन ने देखा—बेबी चुप खड़ी थी।

और बेबी के मौन ने सुना उसका हृदय गौतम की छाया में प्रतिशोध के लिये पुकार उठा था।

४

जब मोहन और बेबी बाहर आये तब अँधेरा सा छा गया था। दोनों ही उस समय चुप थे। अब वे किसी कारागार में नहीं हैं। उन्हें किसी प्रकार की हीनता का अनुभव करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। वे स्वतंत्र हैं। फिर भी गुलामों की [illegible] एक उपहास अवश्य है। अब न नौकर की उपेक्षा मिलेगी न गोरों के प्रभुत्व की छलना। क्यों न वे सारनाथ के खंडहरों में ऐसे घूमें जैसे सारनाथ उनकी संपत्ति नहीं है वरन् वे पत्थर जो इतिहास के किसी काल विशेष का भस्मीभूत गौरव बन कर पड़े हैं उनसे आधुनिक मनुष्य का वहीं तक अपनत्व है जहाँ तक वे उसके हृदय में घृणा की आग नहीं धधका सकते।

अंधकार सर्वत्र छा गया है। नीला आकाश गहन हो गया है। आलोक का पीलापन क्षीण होकर नभ में कभी का घुल गया है। अंधकार का अभियान हो रहा है लंबी शाखायें सघन हो चली हैं। पत्ते झूम रहे हैं। झूमती झंकार मुखरित हो उठी है। स्तब्ध समीरण के हलके स्पंदन तारों के उर को छू कर मानों स्वप्नों का भार ढो रहे हैं।

आकाश में बंकिम शशी एकाकी है। मोहन उन्मन है। बेबी भी एकाकार चाह रही है। बेबी की अवस्था उस प्राचीनकाल की राधा की सी थी जो गा उठी थी कि जब तुम बजा बजा कर थक जाओगे उसे उठा कर अनजान सी हँस दूँगी। हृदय के द्वार खोल दो। पिया तुमने मुझे कैसे पहचान लिया? बाहर देखती हूँ नयन मचलते हैं, अंदर देखती हूँ तुम हृदय में छिप जाते हो, ओ मेरे सलोने प्यारे! हृदय के वातायन खोल दो। मेघों के नूपुर आज बजेंगे नहीं, बिजली नहीं [illegible]। भोर का सुंदर सुहावन रात के अँधेरे पट के भीतर मग्न होकर मचल रहा है। स्वर्ण के आकाश में तुम रश्मि बनकर फूटते हो। लहरों में न जाने कौन मोती बहा जायेगा? मेरे अंधकार भरे घर में तुम्हारी रश्मि आई, कण कण उजागर हो गया, हृदय में मुक्ति छा गई। बादलो छाओ और बादलों के नीड़ में विहग कलरव करनेवाली दामिनी तू ऐसी ज्योति की आल्हादिनी झंकृति कर कि मुझ पर और प्राण पर एक ही आलोक तार गूँज उठे। अरे मैं आज भी उसी प्रवासी की स्मृति में रो रही हूँ। इन मेघों पर मैं दामिनी से लिख रही हूँ। यौवन की कैसी सुलग है? कोई पार नहीं दिखाई देता।

अंधकार की स्वप्निल अलसाहट में नीरव स्वर बार बार उठकर पलपल धूमिल होता हुआ पुकार उठता है। भ्रांत दिशाएँ मौन हैं, उन्माद तरल अनबूझ है। मानों सूनेपन का अवसाद, भरे हुए कुहरे से पूछ उठता है—कौन ?

अँधेरे में विलीन मोहन व्याकुल होकर सोच रहा है। टिमटिम से झलमल शांत क्षीण दीपक आकाश में खेल रहे हैं, वे तारे हैं, जलते हुए हृदय हैं। जग की अनंत पीड़ा के नये प्रतीक संध्या के वृद्ध बटोही श्वासों से तरुण गगन भर रहे हैं।

अब समीर फिर सनसना उठा है। स्वर बार बार फैल रहा है। विषाद की बेला है।

ओ सूने मानस ! अब फिर लौट चलना है जिनको स्वप्नों में भी प्राप्त करना असंभव है उनकी इच्छा सदा के लिये सो जा। कहीं राह में ही रात न आ जाये, कहीं अचानक ही पलकें भारिल न हो जायें। आयु की सिकता पर खड़ा हुआ मनुष्य समय की लहर को लौटते हुए देखता है।

ओ अभिमानी ! विष का प्याला पिला दे। मैं तेरे घर में स्मृति का दीपक बन कर जलूँगा। मेरा सपना तेरी कायरता में स्फूर्ति भरेगा।

आज वह नूपुर की रुनझुन सुनाई नहीं देती। अब दीपक नहीं जलते। जैसे यहाँ गति की लिप्सा थक कर, आज पराजय में छिप कर सो गई हो। सम्राटों का प्यार कहानी बन कर बह गया है। अब वीणा का राग उलझ कर मानव करुणा में रुदन नहीं कर रहा। वासवदत्ता का रूप बुझ गया है, किंतु न जाने

मुझे क्यों लगता है कि किसी की सुधि कर के यह पत्थर भी बराबर सूने में रो उठते हैं !

एकाएक बेबी सिहर उठी। वे लोग बाहर रखी हुई मूर्त्तियों के पास जाकर रुक गये थे। अधिक कुछ दिखाई नहीं देता। केवल इतना ज्ञात है कि ब्राह्मण मूर्त्तियाँ यहीं बाहर रखी हुई हैं।

क्या आज भी ब्राह्मण बौद्ध शत्रु हैं ? और तब मोहन को कुहनी से अपनी ओर आकर्षित करके बेबी ने कहा—क्या यह तुम आज सोच सकते हो कि एक दिन यहाँ ब्राह्मण और बौद्ध परस्पर घोर शत्रु थे जब कि ब्राह्मण का धर्म था क्षमा और बौद्ध का करुणा ? परस्पर फिर भी वे निर्लज्ज से लड़ते थे। सच आज जो उनके गीत गाता है, मुझे तो वह बिल्कुल नहीं सुहाता।

मोहन हँसा ! उसने कहा—'तुम धन का मूल्य नहीं जानती। धन वह गौरव है जिससे गौतम की सहस्र मूर्तियाँ तुम्हारे द्वार पर प्रहरी बन कर खड़ी रहेंगी।'

बेबी विक्षुब्ध हुई। कहा—'जिस पर हम प्राचीन संस्कृति कह कर आज इस दासत्व में दिल बहलाते हुए गर्व करते हैं वह भी अपने काल में इतनी ही द्वन्द्वात्मक अवस्था थी जितनी आज किसी भी दुरूहता की है।'

मोहन ने उपेक्षा से मुँह फेर लिया।

बेबी ने कहा—'मोहन !' स्वर में प्रताड़ित फूत्कार था।

'क्या है ?' मोहन ने मुड़ कर कहा।

बेबी ने कोई उत्तर नहीं दिया। अभिमान ने उसका कंठ अवरुद्ध कर दिया। तो मोहन उसे मूर्ख समझता है !

'कहती क्यों नहीं ?'

'कुछ नहीं।'

'मैंने समझा तुम किताब पढ़ रही हो।'

एक बार अंधकार में नई दृष्टि काँपी और मोहन ने हँस कर कहा—'पगली, रुठ गई।' सुसंस्कृत मनुष्य में से आदिम पुरुष क्षण भरको बाहर आ गया था। अब वह फिर उपचेतना में लय हो गया।

'चलो, मंदिर देखेंगे। कहते हैं दीवार पर बहुत अच्छे चित्र बने हैं। सुना है किसी विदेशी ने बनाये हैं...क्या नाम था उसका......याद नहीं आता......'

'काश इतना ही दिमाग होता,' बेबी ने चोट की। मोहन ने प्रतिहिंसा को समझा।

कुछ दूर चलने पर उन्होंने अनुभव किया है कि अंधेरा हो गया है...

'अब,' बेबी ने कहा—'तस्वीरें क्या दिखेंगी अँधेरा तो इतना हो गया है!'

मोहन का मौन एक स्वीकृति है।

'तो?' दोनों का एक ही प्रश्न है।

'कहीं कुछ मिल जाये...' बेबी ने कहा। घर बनाने की प्रवृत्ति नारी में सदा से रही है। पुरुष कहता है अरे दो दिन को क्या परेशानी, दो तीन साल की बात हो तो चिंता भी की जाये। स्त्री कहती है दो दो दिन करके जीवन बीत जाता है। प्रत्येक क्षण को अपना समझो। किसी पर से पाँव धरकर लाँघ जाने का प्रयत्न न करो।

फिर बाहर की ओर चलना पड़ा। एक छोटी सी दूकान में

छोटा सा मद्धिम दिया जल रहा था। एक बच्चा बैठा कुछ गंदी सी चीज़ खा रहा था। गाहक सामने जा खड़े हुए।

युवती स्त्री ने आँख उठा कर देखा, मानों कटाक्ष किया और फिर मोहन के पीछे ही बेबी रूपी चौकीदार को देख कर सिहर उठी।

'क्या चाहिये बाबू ?'

'अंधेरा हो गया है न ?' बेबी ने आगे बढ़ कर कहा। स्त्री अपने पुरुष को सदैव उच्छृंखल समझती है। वह यह नहीं सोचती कि पुरुष भलमनसाहत के कारण उसी के प्रति आसक्त है। वह समझती है वह भी कुछ शक्ति रखती है। उसे अपने वर्ग की चंचलता पर कभी विश्वास नहीं होता।

'तो......'मोहन ने कहा किंतु काट कर बेबी कह उठी—'मोमबत्ती ओमबत्ती कुछ है।'

युवती स्त्री दोनों को देख रही थी। विवाहिता स्त्री को अविवाहित पुरुष से एक प्रकार की घृणा होती है क्योंकि वह उसे डरती है, क्योंकि वह उसे पालतू जानकर नहीं समझती। युवती स्त्री की आँखों में नवविवाहित से दंपति को देख कर एक सुख फैल गया। उसने मोमबत्ती ला दी।

मोहन हँसा। उसने चलते समय कहा 'वह तुम्हें मेरी...'

बेबी ने लजा कर कहा—'तो क्या हुआ ?'

मोहन मुसकराया। कहा—'यदि उसे ज्ञात हो जाता कि विवाह अभी हुआ नहीं होगा तो ?'

'तो !' बेबी की भौंह तन गई आगे आकर मिल गई।

'तो वह तुम्हें बदचलन समझती।'

'तुम्हें नहीं ?'

'नहीं ।'

'क्यों ?'

'दुनियाँ ने उसे यही सिखाया है ।' बात समाप्त हो गई । मंदिर आ गया । बेबी ने मंदिर में घुसते समय बाहर के घंटे को थपथपाया फिर लकड़ी के दंड को उस पर बजा दिया । एक गंभीर धीमी आवाज़ हलके से गूँज गई ।

मोहन ने मोमबत्ती जला ली !

अँधेरे में उजाला काँपने लगा ।

बेबी ने कहा—'इस धुँधले प्रकाश में क्या तस्वीर दिखेंगी ।'

'अब जो भी हो ।'

लाचार । विवश ।

'काश दो दिन यहाँ रह पाते ।'

'शाबाश । तुम भिक्षुणी निकली कि मैं ?

'बड़ी शांति है ।'

'गौतम ने स्त्री को कोलाहल माना था ।'

वे घूम घूम कर देखने लगे । बेबी ने मोहन की बात पर ध्यान नहीं दिया । मोहन ने ठीक ही कहा था ।

प्रकाश दीवारों पर काँप रहा था जिसके कारण चित्र उतनी स्थिरता से आँखों में गड़ नहीं गये जितना दिन में दिख पाते । फिर भी वे अत्यंत सुंदर थे। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता । उन चित्रों को देख कर मस्तिष्क झनझना उठा । किताबों में यही चित्र छप कर बेढंगे लगते हैं । अच्छी प्रतिकृति में स्वयं जीवन बोल रहा है ।

यह किसने बनाये थे ?

कोई नहीं जानता।

क्या गौतम का चित्र लोग पहचानते ?

नहीं।

किंतु चित्रकार तब क्या था ?

सामंतों का दास।

और अतीत का सत्य......

गौतम की माता की भाँति आज की स्त्री, नंगी अवस्था में खड़ी नहीं हो सकती...

छोड़ो। अब किसी में इतना साहस नहीं कि यह प्रश्न पूछे। लोग कहेंगे देखो कहाँ के बुरे विचार इसके दिमाग में भरे हैं... पर हम आज अश्लील हैं...वे नहीं...क्यों नहीं...... ?

कितनी सुंदर गढ़न है......

गौतम घर छोड़ कर जा रहा है। यशोधरा को उसे वीर कहना चाहिये या कायर ?

बेबी कायर कहेगी।

मोहन ? वीर ही। आखिर पुरुष ही है न ? स्त्री ने अपने ममत्व का त्याग नहीं किया। उसने देखा पुरुष हठी है। हार मानी जीत पाई। परिणाम क्या हुआ......

देखो मोमबत्ती बुझ न जाये।

मार का भयानक रूप अपनी विकरालता को लिये प्रहार कर रहा था। गौतम ने प्रकृति के उपकरण को पाप कहा। जो शिव का दूसरा स्वरूप है वही मार है। शिव भी उसे भस्म करता है किंतु गौतम तो शिव पथ के अनुगामी न थे। तप किया था तब

वे ब्राह्मणों की ही नकल कर रहे थे। क्या इन्हीं साधनों के परि-णाम स्वरूप प्राप्त मध्यमा प्रतिपदा को पाकर उन्हें अपने पथ की पुरानी मंज़िलों से घृणा हो गई ?

चित्र भावनाओं का प्रतीक है। इतिहास उसकी पृष्ठभूमि है...

और फिर निर्वाण का वह चित्र जिसमें कुत्ता तक रो रहा था। कितना करुण। कितना दयार्द्र करुणा का यह धीमा संगीत देश देश में फैल गया। परंतु निर्वाण के समय यह दुख ? और भी, गौतम के शव को घेर कर सांसारिक वेदना ? अनर्थ। घोर अनर्थ। झूठ हो गया सब झूठ हो गया। इससे तो ब्राह्मण की झूठ अच्छी जो अपने अज्ञान को साफ तो झलका देता है।

हृदय भर आया था उन सबका। और निर्वाण की पहचान ? गौतम अजीर्ण से समाप्त हुए थे। खाने के प्रति उनकी लालसा समाप्त नहीं हुई थी। क्या एक दिन गांधी भी अजीर्ण से चल बसेगा ? हिश...सरासर मूर्खता...जैसा जिया वैसा मरा...मोहन हँस दिया।

बेबी ने चिढ़ कर कहा—'तुम तुच्छ-बुद्धि हो। महान आत्माओं से जलते क्यों हो ?'

अजंता की प्रतिकृति का प्रभाव जहाँ पड़ना था वहाँ पड़ चुका था। बेबी अवाक् सी देख रही थी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मोमबत्ती के हिलते प्रकाश में सचमुच वह इस युग में नहीं थी और सुदूर ढाई हजार वर्ष पहले के संसार में लौट गई थी।

चित्र सामने हैं। अब वे जीवन बन गये हैं। हाय क्या वास्तव में हम उधर लौट नहीं सकते। क्या वे बर्बर न थे जिन्होंने इस सौंदर्य के स्रोत को ठोकर मार कर चूर कर दिया। कितना सुंदर

रहा होगा वह युग जिसमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के लिये सब कुछ करता था। आज की भाँति नहीं कि किसी भी बात में सुलझन ही नहीं...

भिक्षुत्व का गर्व मनुष्य के मुख पर उसकी सौम्यता है। उसका अहंकार क्या वास्तव में चूर हो जाता था ?

पवित्र है यह भावना...

और हठात् उसके मस्तिष्क में आया 'छलना'...

देखा, फिर देखा...

क्या हम उसे छलना कह कर दंभ नहीं करते ?

गौतम ने संसार को नूतन ज्ञान दिया था, हम क्या कर सके भी तक ? कार्ल मार्क्स ने कहा है, या गांधी ने कहा है, या...

अपना क्या... ?

मोहन कहेगा, इसमें व्यक्ति की पराजय नहीं। दूसरे की ठीक बात को अपनाने में दोष नहीं, अपनेपन के लिये ग़लत रास्ता चला देना असभ्यता है...

मोमबत्ती आधी से अधिक जल चुकी थी। उसका प्रकाश एकबारगी अधिक तीव्र होता हुआ दिखाई दिया। चित्र जल्दी जल्दी समाप्त हो गये हैं। वे सामने वेदी पर बैठे गौतम की मूर्ति के सामने आ गये। पाषाण पर स्वर्ण वर्ण की पालिश थी। लगता था धातु की मूर्त्ति थी। कितना दिव्य ! कितना गौरव !

पवित्र। हृदय को शांति मिल रही है क्यों ? क्या यह भी मनुष्य का हृदय चाहता है, या हमारी संस्कृति की परंपरा बन कर उपचेतना तक में समाई निधि है। किसी पंजाबी कन्ट्रेक्टर को लाकर खड़ा कर दो। समझ सकेगा वह इतनी बात ?

गौतम महान ! विभ्राट का तेजपुंज ! तुम्हें नमस्कार ! हम ज्ञान के लिये छटपटाते हुए कीड़े हैं। तुम अपने इतिहास के गौरव के कारण हमारे हृदय पर एक न एक क्षण प्राप्त करके अद्भुत प्रभाव डाल देते हो। हम तुमसे एक मत नहीं थे। पर तुम महान, इसमें कोई संदेह नहीं।

और बेबी ने सोचा यदि वह भी विश्व-प्रसिद्ध होती तो क्या वह तब भी इतना ही रुआब खाती ?

तभी। क्लीत्व और वह भी पुरुष के मुख पर ? मोहन घूर रहा था। उसने कहा—'बेबी ! इस गौतम की ग्रीवा कुछ पतली है।' वह हँसा। कहा—'सारे भारतीय वीरों के मूछें हैं, बस राम और कृष्ण के चित्रों में नहीं मिलतीं। तीसरा वीर गौतम है। किंतु देखो, जो मूर्त्ति प्राचीनों ने बनाई है वह कितना दिव्य पौरुष लिये हुए है। यहाँ हार हो गई।'

बेबी ने नतमस्तक सोचा।

भारतीय शिल्प की समरसता में कितनी पूर्णता थी। फिर याद आया। उन्हीं भारतीयों ने यूनानियों से संसर्ग होने पर उनसे जो सीखा जा सकता था सीख लिया। अब जो हमारे सामने अनेक सभ्यताएँ आ चुकी हैं क्या हम उनको त्याग दें ?

मोहन गंभीर था। उसे अभी तक शोक हो रहा था। भारतीय कलाकार ने आगे चल कर स्त्रैण जीवन की ओर इतनी अभिरुचि क्यों दिखाई ? भक्ति नाम की कोमलता ने क्या उसे 'वीर' से दूर नहीं किया ?

एक बार मोमबत्ती फफक उठी और फिर धीरे धीरे अँधेरा

लौ को सब ओर से भींचने लगा। धीरे धीरे लौ दम घुट कर छटपटाने लगी।

मोमबत्ती बुझ चुकी थी।

अँधकार में दोनों विस्मृत से खड़े रहे। एक दिन धर्मकीर्त्ति ने इसी प्रकार चिंतन किया होगा। न जाने कितने व्यक्ति इसी चिंता में ऐसे ही खड़े हुए होंगे।

मोहन और बेबी अंधकार की बढ़ती सनसनाहट में चुपचाप समीर की झूम सुन रहे हैं...

भय नहीं लगता। एक दिन जो एक व्यक्ति ने अपने को बुद्ध कह दिया था उसका प्रचंड प्रभाव आज भी मनुष्य का हृदय सरलता से दहला सकता है।

धीरे धीरे दोनों को ध्यान हुआ।

मोहन और बेबी बाहर निकल आये।

एकाएक बेबी ने कहा—'कुछ याद है!'

'क्या?'

'लौटना नहीं है?'

स्त्री को घर की याद अवश्य आती है और वह भी तब जब पुरुष स्वर्ग की ओर चलने लगता है।

'अरे वह ताँगे वाला', बेबी ने आतुर कंठ से कहा—'कहीं चला न गया हो...वर्ना...'

मोहन ने काट कर कहा—'वह भी क्या कोई तुम्हारी तरह पागल है? आने का किराया नहीं लेना है उसे?'

'अरे हाँ मैं तो भूल ही गई थी। बेचारा। खड़ा खड़ा ऊब

गया होगा। उसको तो इतनी समझ ही नहीं। कितना कठोर है जीवन ?'

'बात कम'

'चलो जल्दी चलो'

सामने से एक गंभीर भिक्षु जाता हुआ दिखाई दिया। उसके शरीर पर काषाय था। सिर काफी बड़ा था। आँखों पर चश्मा लग रहा था। धीर सुस्थिर पग रखता हुआ वह विदेशी अपने चिंतन में मग्न था।

'एक बात रह गई', मोहन ने सोचते हुए कहा—'हमने अभी चीनी मंदिर नहीं देखा।'

'तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?'

'गलत रास्ते से आने का फायदा।'

'यानी।'

सामने ही चीनी मंदिर था। दोनों भीतर घुस चले। चीनी स्थापत्य कला में सुदूर की वह मैत्रायणी सभ्यता उन्हें कुछ अपनी ही प्रतीत हुई, जैसे उससे कुछ उनका अपना सौहार्द्र था। ऐसा नहीं लगा जैसे अँगरेज़ी गिरजों में जाने पर अचानक ही एक नूतनता, अपरिचय का भाव होता है। और बेबी को उस सदियों से जलती अग्नि की स्मृति हो आई जो आज तक नहीं बुझी जो एक दिन प्रताड़ित पारसी लेकर आये थे। बेबी को अपने पूर्वजों की स्मृति हो आई।

एक बंगाली दर्शक द्वार पर अपनी चप्पलें पहन रहे थे, अपने बच्चों की बिखरती हेड़ को इकट्ठा कर रहे थे।

मोहन को उन्हें देख कर हँसी सी आई। उनकी शकल बूढ़े

चौकीदारों की सी थी। वे कभी बड़बड़ाते थे कभी चिल्लाते थे। अजीब से थे उनके हावभाव। उनकी व्यस्तता में लग रहा था कि वे शायद सारनाथ से बिल्कुल प्रभावित नहीं हुए थे।

उनको कुरूप किंतु सुहागिन लड़की जैसे वह भी एक दासी की मूर्ति ही हो, झुक कर अपने सैंडल बाँध रही थी। कैसा भी आज का मध्यवर्ग हो वह 'भारतीयता' के हावभाव और बेशभूषा से तो दूर ही हो गया है। क्या वह भी हमारा अपमान ही है? क्यों देखते ही मजदूर या किसान का सा रूप सामने नहीं आ जाता?

इस चिंतन में एक आधार है जिस पर मोहन इस समय विचार नहीं करना चाहता क्योंकि वह एक नीरस विषय है। पूँजीवाद। साम्राज्यवाद। मोहन मन ही मन हँसा। बेबी ने अपने जूते उतार दिये। बंगाली परिवार चला जा रहा था! वृद्ध कुछ मंत्रपाठ सा कर रहे थे।

दोनों इधर उधर देख कर मंदिर में घुस गये। सामने गौतम की विराट मूर्त्ति थी। उस कमरे में एक ऐसा औदार्य्य था कि उनके मन पर उनका एक चिन्मय प्रभाव पड़ा। वे स्तब्ध हो गये से देखने लगे। दीपकों का झिलमिल प्रकाश हृदय पर काँप रहा था।

गौतम जीवन की कृत्रिमता का सबसे बड़ा उपहास है। निराकार साकार में आकर पराजित हो गया था।

और उस निस्तब्धता के पंख फैल गये। वे चीन में नहीं हैं। चारों ओर भूर्ज पत्र नहीं पड़े हैं परंतु वे फिर भी अनुभव करते हैं कि जहाँ वह खड़े हैं वहाँ जीवन इतना आतुर नहीं

जितना कलकत्ते की चित्तरंजन एवेन्यू में। यहाँ आँख चूकते ही जान नहीं जाती। यहाँ मनुष्य मशीन नहीं है। यहाँ जो आत्मा की समवेदना का आत्मनिग्रह है वह सर्वथा आज दूर होता चला जा रहा है। क्या इसे भी हम सभ्यता की प्रगति कहें ?

वृद्ध चीनी भिक्षु कुछ गुनगुना रहा था। दीप शिखा का मद्धिम प्रकाश उसके चमकते हुए ललाट पर मार रहा था जिसके कारण वह प्रदीप्त सा लगता था। भव्य था उसका वह नम्र विग्रह, काषाय का पीलापन आलोक में जगमग हो उठा था।

और हाथ की घंटी धीरे धीरे बजती रही अपने अनेक मरोड़ लिये और 'टिनटिन टिन्न टिनान......' का अविरत् गुंजन मानों गौतम के चरणों को छूकर धीरे धीरे अतिथियों के हृदय में उतर कर उन्हें अपनी ओर खींचने लगा।

आराधना की गरिमा हृदय को संकुचित करने लगी। उसका गीत समझ में नहीं आया पर शायद चीनी भाषा के शब्द रहे हों। समझ में नहीं आये। किंतु सुनने में अच्छे लगते थे। यूरोपीय गीत सुनने में अच्छा नहीं लगता। औरतें ऐसे चिल्लाती हैं जैसे कुतिया भूँक रही हो पत्थरों को घिसने का सा शब्द करते हैं वे गायक पुरुष। यह कितनी सांत्वना देता है। आखिर तो सौंदर्य्य की सूक्ष्मता जितनी एशिया वाले समझते हैं उतनी वह लोग क्या समझें ?

मोहन को याद आया कि दक्षिण के वैष्णव पांचरात्र मंदिरों में भी पुजारी ऐसे ही घंटी लेकर अपने देवता के सामने मंत्र पाठ किया करते हैं। वह स्वर भी सुनने में बहुत अच्छा लगता है।

और वे लौट चले।

'तुम्हें तो याद होगा', बेबी ने कहा—'प्राचीनकाल में अनेक ब्राह्मण 'मिशनरी' बन कर दूर दूर के देशों में जाया करते थे ? कितने विस्तृत दृष्टिकोण थे उनके। कूएँ में मेंढ़क कूदा नहीं कि बस खतम।' बेबी ने हाथ नचा कर इंगित किया। कहते हैं एक दार्शनिक था जिसने अनेक वर्ष चीन में एक दीवार ताकते हुए ही बिता दिये। शून्य पर कितना भयानक तन्मय केन्द्रीकरण था मन का ? आज कोई कर सकेगा। क्षण क्षण दिमाग़ फिसला करता है.........।

और मोहन ने देखा समय के पथ पर आज ब्राह्मण और बौद्ध अपनी पृष्ठभूमि के एक आधार के कारण एक दूसरे को गालियाँ नहीं देते क्योंकि दोनों का बाह्याचार अब जन साधारण को 'धर्म' के नाम से ज्ञात होता है। 'धर्म' का अर्थ भले ही समझाया न जा सके किंतु भारतीय को उसकी एक विशेष अनुभूति सी होती है जिसके बिना वह अपने जीवन को अधूरा समझता है, निरर्थक, भग्न। वह आज नहीं जानता कि बौद्धों के धर्म में ईश्वर नहीं होता पर मूर्ति पूजा होती है, आत्मा नहीं होता पर पुनर्जन्म होता है, अहिंसा होती है पर अशोक ने खड्ग नीचे नहीं रखा था। वह अंतिम समय तक सम्राट बना रहा।

और ब्राह्मण और बौद्ध होते हुए भी वे प्राय: एक थे।

एकाएक बेबी ठिठक कर खड़ी हो गई।

'क्यों ?' मोहन ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—'ठोकर लग गई ?'

'नहीं।'

'तो'

'जाने का मन नहीं करता।'

'वह देखो राजा बिड़ला की बनवाई धर्मशाला आ गई। अब तो आ गये समझो। लगता है यह धर्मशाला भी उसी युग की वस्तु है।'

'पूँजीपतियों की टाँग हर जगह घुसी रहती है', बेबी ने उपेक्षा से कहा शायद धनहीनता इस समय बेबी के हृदय में एक हीनत्व की भावना सी भर गई थी।

'तो तुम्हें क्या करना है ?' मोहन ने चिढ़ कर कहा—'जिन श्रेष्ठियों के बनाये विहारों में गौतम श्रमण विश्राम करते थे वे और क्या थे ? बस यही था कि पूँजीवादी रीति से वे शोषण नहीं कर पाते थे, किंतु साथ ही सामंत काल में मनुष्य को, प्रजा को नागरिक अधिकार तक नहीं दिये गये थे।'

'वह युग ही और था।'

'तो यह युग भी और ही है।' मोहन ने रुक्ष स्वर से कहा—'समझता नहीं किसी भी बात को। हर बात में टाँग अड़ाना। चाहे जरूरत हो, चाहे न हो, इससे को बहस नहीं। नहीं बोलेंगे तो घट जो जायेंगे।'

अंधकार में मोहन का मुख नहीं दिखा पर बात बेबी को अच्छी लगी। क्यों ? शायद वह स्वयं नहीं बता सकती।

उसने कहा—'क्यों जी। तुम इसे ठीक समझते हो ?'

'मैं सब ठीक समझता हूँ। समाज की व्यवस्था में व्यक्ति एक सीमा तक रुचि का प्रभाव डालता है, यह मानना पड़ेगा।'

बेबी हँसी जैसे वह मान कर उठेगी जो एक दिन राधा ने किया था कि मैं अमर विष की एक प्याली हूँ, बालम तनिक इसे

पीकर तो देख कि रग रग में जीवन नाच उठे, अल्हड़ यौवन गीत में पागल हो जाये।

तू मेरी प्यास बुझा जा। सारा सागर विक्षोभ से गरज रहा है, किंतु तीर फिर भी लुब्ध है। ये चिर अतृप्ति की लाज कि सोया हुआ यौवन जल जल उठता है, तृष्णा की सुलगन मच उठती है। भिनसार तक प्रतीक्षा हो चुकी, जाग कर ही सारी रात बिता दी, किंतु व्यक्ति की प्यास फिर भी नहीं बुझी।

उसने मोहन की बात का उत्तर नहीं दिया। मोहन को उस समर्पण में आत्मीयता की झलक मिली।

विश्रांत गगन। यौवन लुट रहा है। सुधि से भी धुँधले तारक जाग उठे हैं; स्वप्निल सी उन्मत्त सिहरती संध्या बेसुध होकर अपनी कवरी खोल उठी है। मूक तिमिर नूपुरध्वनि सा गूँज रहा है। व्याप्ति। कण कण गूँज रहा है। जीवन असीम है! गगन अब फिर मलीन हो चला है।

प्यासे चुबन मिलन को उन्मुक्त नहीं कर सकते। रंग मिट-मिट कर वरदान बन गये हैं। हे आकुल! तुझे राह दिखाने मेरे पथ के गीत व्याकुल हो उठे हैं। मेरे अंचल के सारे शूल मेरे उर में व्याप गये हैं, तेरे लिये सुमनमात्र शेष हैं। होठों में व्यथा के फेनिल कंपन मात्र।

मन एकाकी है, पाँव अभिभूत हो चले। पुराने पथ फिर नये क्यों लगते हैं? बीते हुए दिन अतीत के अंधकार में फिर जाग उठे हैं। मेरा शून्य गगन तारों से दीपित करके किसने बाँध लिया इतने दीपक किसलिये जल रहे हैं। आज आँसू मेरे जीवन का यापन है।

किंतु फिर भी वह मनमोर मेघमलार गा कर फलक अनल जल अवनी सबको स्वर से एकाकार कर देना चाहता है, आधार न मिले न सही। तरु-मुरली में साकार शब्द भर गया है, जो हृदय का तार बन कर झूमता हुआ पुकार उठा है।

'बेबी !' मोहन उच्छ्वसित हो उठा था। 'एक दिन ऐसे ही अँधेरे में अशोक का पुत्र कुणाल भटकता था। उस दिन कंचना उसका संबल थी आज मेरे साथ तुम हो।' बेबी ने मुड़ कर देखा। और मोहन गा उठा—

मेरे प्राणों का रूप वही
जो हर सुंदर का होता है
मेरे जीवन का रंग वही
जो चिर प्रकाश में सोता है

मेरे भीतर बस एक नाद
करता कल्लोल सदा मानी
जो प्रलयनिनादी अट्टहास
से इस ईमन तक होता है

मैं प्रलय निशा में सोता हूँ
पर शांति उषा में हूँ उठता
मेरी गति की ही परछाईं
सूरज चंदा में पोता है

गीत की लय अँधेरे में करुणा की भाँति लय हो गई।

जीवन का उल्लास आज नवीन हो गया है। फिर वह खोई हुई मूक स्मृतियाँ पास लौट आई हैं। आज विहंगम के स्वर में भी

राधा लास कर रही है। सखी, जीवन का आनंद मुखरित हो रहा है।

बेबी ने देखा। अमराइयों में कुछ लोग आग जला कर ताप रहे थे।

हम निर्बल हैं। संसार को बदलना चाहिये। धूआँ पेड़ों में घुस रहा होगा। इस आग की लपटें कितनी सुंदर हैं। गौतम के युग में भी उद्यानपाल ऐसे ही बैठे रहते होंगे......

विचार फिर भटकने लगे। एक ओर विक्षोभ है, दूसरी ओर मोह। तीसरी ओर 'हम' किंतु केन्द्र में 'मैं' है, जो एक बड़ा धोखा देकर सबका अपने व्यक्ति के सुख के लिये असंभव समन्वय करने का प्रयत्न कर रहा है।

गहरा प्रशांत अंधकार कण कण में नितांत व्याप गया है। अंततम में आलोक मूक है, आँखों में अमिट भूख भर रही है। मन-घर से आँख तक सभी श्रांत होकर तृप्त से मानस में लौट जाते हैं।

हम एक, दोनों एक ही समान हैं। मुझमें जीवन की निशीथ है, तू मुझे आलोक का गीत सुना। हे प्रकृति जब तू मुझसे दूर होती है तब मैं दीनहीन हो जाता हूँ। मेरी शक्ति तेरे कारण है।

ढाल, कुछ ज्योति मेरे मन में, इस जीवन नाटक को कुछ संबल दे। दिन का भटकता जीवन रात में कैसे झपक जाता है, देखूँ तो सूर्य्य के आलोक में खिले सरसिज सांध्यरश्मि में कैसे ढल जाते हैं।

पग तप्त और श्रांत हैं।

मन दरिद्र है। संसार दरिद्र है। दारिद्र्य की इस बात को बार बार दुहराने से बात का मजा फीका पड़ जाता है।

भूखे को ही खाना अच्छा लगता है।

मध्यवर्ग की शैतानी ताक़त ने हँस कर अपना सिर उठाया फिर गुनगुनाई।

सुना। मन की गहराइयों में सुना। ध्वनि का आलोक अब मौन का अंधकार बन चला।

प्रलय की भूखी तृष्णा, तुझे खंडहर पर किस लिये शोक हुआ है? करुणा की वंशी दूर बज उठी है। सूना मन जाग कर अधीर हो उठा।

वे वैभव के स्वर्णिम सपने विध्वस्त हो चुके। गाती तो है पर विहाग का सुर भीतर ही घुट जाता है।

अपमानित जीवन पथ पर मन में थोड़ी सी आशा संचित है। जो प्याला भर कर होठों तक उठाया वही बार बार गिर गया। जो पीड़ा मुझमें है वह कोई सुखिया क्या जाने। रात की निर्जनता में दुख के गीत गूँथा करती हूँ।

ओ भूखे प्यासे पंथी तार टूट टूट कर क्यों जुड़ रहा है?

पागल तेरा प्यार कि कोरों में आँसू छलकते ही रहे, और अभिमानी मन निर्धूम सा सुलग उठे।

मैं अगरुधूम सी मतवाली जीवन का अणु अणु सुरभित करती हूँ। अरी मैं आँसू की बेला बरुनी, सागर की सी मुझमें हलचल है। काल। पीड़ा उलझन के मीठे तारों को नहीं सुलझा सकती। व्याकुलता भी मेरा विलास है, ला खुमार से ही मेरी प्याली भर दे! ज्वालामुखी फूट रहा है। कितना सघन धूम

आधारहीनता पर निरालम्ब गगनारोहिणी कल्पना ऐसे ही उठ रही थी जैसे गई गुज़री बात का भूत मँड़रा रहा हो।

दोनों इस समय अपने आपको भूले हुए हैं। संसार का शायद कोई भी तीसरा आदमी उनकी भावनाओं को समझने में असमर्थ है। वे अपने में तन्मय। व्यक्ति की वासना अपने आपको सब से अलग करने का घोर प्रयत्न कर रही है किंतु क्या वह कभी सफल होगी ?

नहीं, नहीं, सौ बार नहीं।

दोनों ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वे अपने रंग में डूबे हुए थे।

कल्पना ने सिर उठाया। अँधेरे में युवक स्त्री और पुरुष आवश्यकता से अधिक अनुभूतिवान हो जाते हैं......

और पुरुष और नारी। पुरुष को लग रहा है कि अहर्निशा पूर्णचंद्र नारी के नयनों में खेल रहे हैं। उसी के मधुरतम आलोक से दिशा दिशा में पौरुष ज्योतित है। जीवन रस उमड़ रहा है। उस तन्द्रिल छबि में ममता की द्विगुणित कारा है। स्फुलिंग की भाँति तंतु तंतु की शक्ति भ्रमित सी भीतर पुंजीभूत हो गई है।

ओ नारी ! तू महारंध्र में से निकली जीवन रागिणी के समान है। लज्जा के अंचल में प्रदीप्त सी तू सूर्य्य किरण सी फूट रही है। तू आनंद की मधुरिम छबि है, केवल एक शृंखल अनुभूति सी। मेरे महामार्ग की विश्रांति मिटा दे।

मैं प्रखर दिन सा भीषण हूँ। तू महानिशा का गंभीर संगीत है। रंगीन साँझ सा महामिलन तुझमें महान हलचल भर रहा है। नारी ! तेरी अँगड़ाई में क़ोमल वकास फूट रहा है।

तू एक गहन नींद है, मैं खोया हुआ जागरण हूँ। ओ सुकुमारी मैं अंतस में पूर्ण मग्न हूँ। तू ज्योत्स्ना सी रुचिर है। प्रश्न: अकर्मक!

और नारी! ओ पुरुष! हिमाच्छादित गिरि पर बादल लोड़न कर रहे हैं, जिस पर कोई नीला प्रकाश झिलमिल झिलमिल चमक रहा है। तेरे हाथों में भीषण तूफानी झंझा है, तेरे श्वासों में आँधी का महाशोर काँप कर नाच रहा है। मैं जिस पथ पर विनाश करता हूँ तुम उस पर सलज विकास करती हो।

तेरी छाया लहरों में कितनी गहरी होती जा रही है। मेरे क्षितिजों में अवनी की छाया हँस हँस कर सिहर उठी है।

जीवन की कोमल मधुर भूमि! मैं वह तरु हूँ जिस पर यौवन है। आकांक्षा के खग चहक रहे हैं। जीवन भरमा रहे हैं......

तभी अंधकार में घोड़े ने टाप पटकी और दोनों आसमान से लुड़क कर फिर धरती पर आ गये। दुनिया फिर सामने आ गई थी। आखिर शुतर्मुग को बालू में से सिर निकालना ही पड़ा। वह व्यर्थ ही समझने लगा था कि तूफ़ान गुज़र गया। अब वही नीरसता। वही हाट बज़ार, वही कोलाहल, दुनियादारी, सम्राटों की वाराणसी नहीं, अँगरेज़ों का बनारस जहाँ 'नगराधीश' नहीं, 'आई० सी० एस०' का राज्य है। लड़ाई की मँहगाई से प्रत्येक व्यक्ति परेशान है। उसे कुछ भी समझ नहीं पड़ता। वह एक जड़ता को अपनी चेतना का सबसे सशक्त रूप समझने लगा है। बहुत कुछ कहा जा सकता है किंतु सबका सारांश यही है कि वह नितांत विकृत है, निकृष्ट है। वह अपने द्वंद्व में दोनों ओर ही अंधकार देखता है। क्या करे? कहाँ जाये? दूकानों में पैसे की

मशीनें बैठी होंगी, और भूखे और मजदूर पैसे देकर भीख माँग रहे होंगे......

विषम है यह विडंबना......दलित विमर्दित अपमानित और ऊँघते हुए ताँगे वाले ने दबे हुए स्वर से कहा—'बाबूजी घंटों लग गये। क्या कोई खेल थेटर था क्या......बड़ी देर लगी...' और वैसी ही बेवकूफी भरी बड़बड़ाहट। गौतम की महानता चकनाचूर होगी।

और मोहन को लगा कि गौतम के विषय में इतिहास ने यह सच कर दिखाया कि घर का जोगी जोगड़ा आन गाँव का सिद्ध। चीन, हिन्दचीन, सुमात्रा, जावा, बाली, बरमा सब में तो—'त्रिपटक का डंका बजा दिया, उस पीली कमली वाले ने', परंतु भारत में लोग उसे उतनी ही आसानी से भूल गये जैसे कल सुबह क्या साग खाया था यह याद ही नहीं पड़ता।

ताँगे वाले ने कहा—'बाबूजी बहुत देर हो गई।'

मोहन इसका अर्थ समझ गया। यानी ज्यादा किराया माँगोगे।

उसने कहा—'हाँ जगह ही ऐसी थी।'

ताँगे वाले ने समझ लिया कि बाबूजी बहुत हुज्जत करेंगे।

'मैं इधर काफी आया हूँ।'

'और लोग ऐसे ही देख कर चले जाते हैं।'

'आप कुछ साथ ले आये हैं क्या?'

मोहन कुढ़ा।

'तुम क्या जानो।' बेबी ने उपेक्षा से कहा।

'हाँ बीबी हम गँवार ठहरे। एक दिन हमने भी देखा सब टूट फूट गया है। कुछ मूरत जरूर धरी हैं।'

स्वर उठा और जैसे एक दिन गौतम का स्वर सुन कर ब्राह्मण-

खलभला गये थे, संस्कृति के रक्षक बेबी और मोहन दोनों ही चौंक गये और जैसे ब्राह्मणों ने घृणा से अट्टहास किया था मोहन और बेबी भी अभिमान से भर कर हँस उठी, तांगेवाला भी हँसा।

सारनाथ का खंडहर ही क्या। सारा भारत एक खंडहर बन कर पड़ा था।

मोहन ने कहा—'बेबी' फिर कुछ सोच कर अंगरेजी को अपना लिया—'यह आदमी भी कुछ अजीब लगता है।'

बेबी ने अंगरेजी में ही उत्तर दिया—'मूर्ख है इसकी बात पर ध्यान देने की जरूरत ?'

'कुछ नहीं। मैं तो योंही कह रहा था।' तांगेवाले के खटक ही थी दिल में एक पत्थर की नोक। क्या चित्त आया है मौके पर। बिल्ली ने शेर को सब सिखा दिया था सिर्फ पेड़ पर चढ़ना नहीं सिखाया। उसने विक्षोभ से घोड़े के चाबुक फटकार दिया। घोड़ा, जैसे कुछ नहीं हुआ। बेबी और मोहन के सामने जो ताँगे-वाला, ताँगेवाले के सामने वही घोड़ा...

तभी बेबी ने कहा—'कुछ भी हो, मजा आगया...'

पवित्र सारनाथ का इससे बढ़कर अपमान शायद नहीं हो सकता था। क्या करता ?

आखिर वह खंडहर था !

और ताँगेवाला सोच रहा था। आखिर इस लड़की को ऐसा मजा कैसे आया...क्या...

और दयनीय घोड़े पर चाबुक फिर बज उठा।

कौन जाने घोड़ा गौतम को निर्वाण पथ पर ले जाने का श्रेय स्वयं ले लेना चाहता था...

अमरता—एक व्यथा

प्रासाद की शिल्प सज्जामय प्राचीरों से घिरा वह छोटा प्रकोष्ठ अगरु की सुगंधि से महक रहा था। साँझ हो चली थी। अभी दीपक नहीं जले थे। अधलेटी सी राजकुमारी ने कुछ न समझ कर कहा—'अरे! क्या बात है? कुछ कह न?'

व्रीड़ा ने अपनी चंचल आँखों को अल्हड़पन से नचाते हुए कहा—'देवी! यह तो कहती है मैं अमर होना चाहती हूँ।'

'ओह!' राजकुमारी ने कहा—'कोई हुआ है बोलो आजतक? पगली है। इसे जाकर वृद्ध पुरोहित को दिखा। इसे कोई उपदेवता तो नहीं लग गया?'

उसके स्वर में डूबा हुआ विषाद मानों एक बार फिर बाहर आने की व्यर्थ चेष्टा करके फिर भीतर ही डूब गया। किंतु व्रीडा हँस कर बोल उठी—'देवी! आप उसे गुस्सा कर देंगी। बेचारी भोली बच्ची...'

वह खिलखिला कर हँस दी। नीला के कपोलों पर सौंदर्य्य मान करता हुआ भाग चला। राजकुमारी ने देखा। फिर धीरे

से कहा—'नीला सखी ! कितनी काली हैं तेरी आँखें, अथाह नदी से भी गंभीर, लहरों से भी तरल...'

नीला रोक कर कह उठी—'और आप राजकुमारी ! वे काले काले केश, यह स्वच्छ रंगीन वस्त्र, यह यौवन का श्यामल प्रवाह...'

और इतना भारावृत्त हो गया यह प्रलाप कि राजकुमारी ने टोक कर कहा—'चल हट ! व्यर्थ की बातें किया करती है।'

नीला ने स्वर बदल कर कहा—'ओहो ! मैं जैसे कुछ जानती ही नहीं ? कभी महानद के गर्जन को किसी ने नहीं सुना, शुभ्र ज्योत्स्ना को देख कर आँखें बंद कर ली हों दोष किसका है ? बोलो सखी।'

राजकुमारी लजा गई। उसने मुँह फेर कर कहा—'दुर पगली। न जाने क्या क्या सीख गई है, जो बसंत के कोकिल की भाँति रातदिन कूकती फिरती है।'

नीला बैठ गई। उसने घुटनों में सिर छिपाते हुए कहा—'किंतु राजकुमारी के हृदय में हूक क्यों उठती है ?'

राजकुमारी अचकचा कर कह उठी—'दुष्टे !'

व्रीड़ा और नीला उठ कर हँस दी। तरल हास्य की उफान में ही नीला ने कहा—'पहले मैं भी उसे चाहने लगी थी व्रीड़ा, किंतु राजकुमारी जिस फूल को उठा ले उसे भला नीला छूने वाली कौन ?'

व्रीड़ा ने कहा—'क्यों यौवन पर यह बंधन ? जाने कैसी हो तुम लोग ?'

'ओह', नीला ने मुँह बना कर कहा—'जैसे तुम तो कुछ जानती ही नहीं। युद्ध में गये हैं वे राजकुमारी ! भुजाओं में अतुल पराक्रम भर कर। आखिर व्रीड़ा ने ही तो उन्हें जाते समय

पुलकित किया था। सेनानी निरुद !!' स्वर खिंच गया और फिर एक धीमी श्वास के बाद कहा—'सचमुच नीला ही एक अभागिन है।'

व्रीड़ा ने उसकी वेदना को नहीं समझा। उसने मुसकरा कर कहा—'देखा देवी! यह तो ठंडी साँसें छोड़ने लगी !!'

राजकुमारी ने नीला के सिर पर स्नेह से हाथ फेरा और कहा—'तुम सुहागिन हो न व्रीड़ा। तुम्हें तभी तो भय है। सचमुच हम लोगों के इतने भाग्य कहाँ?'

'क्यों देवी', व्रीड़ा ने पूछा, 'मन फिर गया?' सुहागिन थी वह। वेदना की कचोट से उसका हृदय अनभिज्ञ था।

राजकुमारी चुप हो गई। व्रीड़ा सोच रही थी, इतना सुंदर शरीर, वह कोमल मुख, वह नील नयन, पिंगल केश और सबके ऊपर वह भोली दृष्टि......फिर भी......

और नीला सोच रही थी—राजकुमारी इतनी उदास हैं! आखिर क्यों?

प्रकोष्ठ में न वेदना का धुँआ दीखता था, न आग ही।

२

उन दिनों आर्य्यों का आक्रमण हो रहा था। नित्य ही नये नये संवाद आकर लोगों के हृदय में खलभली मचा देते थे। द्रविड़ों में उन विजयेच्छा रखने वाले बर्बरों के प्रति घृणा दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। एक सप्ताह पूर्व असंख्य आर्य्यों ने छिप कर आक्रमण किया था किंतु सेनापति निरुद के प्रचंड पराक्रम ने उन्हें खेत की मूली की भाँति काट गिराया। लोग रणक्षेत्र में घायल पड़े आर्य्यों को कौतूहल से देखने गये। कौन

हैं यह लोग ? कहाँ से दल के दल बाँध कर चले आ रहे हैं ? कुछ लोग इन्हें देवता कहते हैं ? जब स्त्रियों की भीड़ उन्हें देखने गई चारों ओर आनंद की किलकारियाँ गूँज उठीं। किंतु राजकुमारी की दृष्टि एक घायल पर टिक गई। उसने व्रीड़ा को बुला कर पूछा—'व्रीड़ा ! सेनापति से पूछ तो यह कौन है ?'

सब लोग वहीं आ एकत्र हुए।

सेनापति निरुद ने वृद्ध पिता की एकमात्र पुत्री की चपलता को देख कर कहा—'राजकुमारी की दया हिरन पर होनी चाहिये, गैंडे पर नहीं।'

लोगों ने समवेत स्वर से स्वीकार किया। किंतु राजकुमारी फिर भी खड़ी रही। वृद्ध शिन्थाल ने आगे बढ़ कर कहा—'अरे यह निरीह तो गाता फिरता था। मैंने इसे उस दिन जंगल में छिप कर देखा था। और एक दिन इसी ने मुझे छोड़ दिया था।'

वृद्ध हँस पड़ा। लोगों को विस्मय हुआ। बर्बर दया करना भी जानते हैं !

उस समय नीला ने आगे बढ़ कर कहा—'यह बर्बर हमें दास बनाने का अहंकार रखते हैं ? हम इन्हें दास बनायेंगे।'

राजकुमारी का वक्षस्थल गर्व से फूल गया। भीड़ छँट गई। घायलों की कराहों के बीच जब राजकुमारी ने घायल को पानी पिलाया, उसकी आँखें पागलों की भाँति चंचल थीं।

वृद्ध शिंथाल पास आकर घुटने टेक कर बैठ गया। उसने कहा—'देवी ! सेनापति निरुद के प्रहार से चट्टान टरक सकती है। फिर इसका क्या ? देवी ! मैं अनेक भूखंडों को देख चुका हूँ। जिस समय मूर्छित होकर यह घोड़े से गिरा था उस समय

लगा था जैसे भोर की पहली स्वर्णिम किरण से रंजित हिम-शृंग टूट पड़ा हो ।'

राजकुमारी सुनती रही । निस्पंद आवाक् ! वह देख रही थी उसके नील नयनों में चमकती हुई तारा, जैसे निस्तब्ध गगन में एकाकी संध्यातारा टिमटिमा उठा हो...

उसे लगा जैसे नील सागर में आशा की लघु नौका डगमगा रही हो......

और वे घायल को प्रासाद में उठा लाये । उन्होंने उसके सिर पर पट्टी बाँधी और उसे दूध दिया, उन्हें ज्ञात हुआ वह अपनी वेदना खो चुका था ।

राजकुमारी सूनी आँखों से उसे देख रही थी । उसका हृदय बिल्कुल निस्पंद हो गया था, अभिभूत...निर्द्वन्द्व......अवाक्... क्या उसने पागल को दास बना कर सचमुच आर्य्यों का अपमान किया था !!!

३

रात को नीरव अँधियारी में राजकुमारी उठ बैठी । नींद नहीं आ रही थी, हृदय व्याकुल हो रहा था । वह उठ कर बाहर चली आई । प्रहारियों ने आदर से सिर झुका दिया । उद्यान में वह जाकर दूर्वा पर बैठ गई । आकाश में अनेक नक्षत्र घूम रहे थे, रह रह कर समीर काँप उठता था । एकाएक राज-कुमारी चौंक उठी । उसने पुकार कर कहा—'कौन है ?'

'कोई नहीं देवो ! मैं हूँ ।'

व्रीड़ा पास आ गई । राजकुमारी मन ही मन खिन्न हुई । पूछा—'इस समय तू यहाँ ?'

'देवी आपको कहीं नहीं पा सकी थी।'

व्रीड़ा बैठ गई, कहा—'मैं जानती हूँ।'

राजकुमारी ने विस्मय से आँखें उठाई। पूछा—'क्या जानती है ?'

'आप', व्रीड़ा ने कहा—'उस दास को......'

'व्रीड़ा !' राजकुमारी का स्वर कठोर हो गया। व्रीड़ा चुप हो गई। राजकुमारी ने कहा—'व्रीड़ा ! वह शत्रु है।'

व्रीड़ा ने सुना। कहा—'मैं यही कहने आई थी। अब जाती हूँ।'

उत्तर की प्रतीक्षा के बिना ही वह चली गई। देर तक राजकुमारी वहीं लेटी रही। तारे झुकने लगे थे। न जाने क्यों एक बार राजकुमारी की आँखों में पानी छलक आया और उसके होठों से फूट निकला...शत्रु......

उद्वेग से भरी जब वह प्रकोष्ठ में लौट कर आई उसने देखा घायल भूमि पर सो रहा था। उसने देखा और देर तक देखती रही।

उसी समय किसी ने कहा—'देवो !'

राजकुमारी ने देखा। व्रीड़ा थी। और राजकुमारी उसके कंधे पर सिर धर कर रो उठी।

४

राजकुमारी ने अपनी शैय्या पर लेटते हुए कहा—'नीला ! युद्ध समाप्त नहीं हुआ ! न जाने क्या होगा ?'

नीला चुपचाप बैठी थी। उसने कहा—'देवी ! संवाद अच्छे नहीं हैं।'

राजकुमारी उद्विग्न हो गई।

'वह कहाँ है ?'

'बाहर घूम रहा है।'

'राजकुमारी,' व्रीड़ा ने धीरे से कहा—'निरुद ने तुम्हारे दास को पागल बना दिया है, मुझे खेद है। किंतु निरुद तो तुम्हारा ही अनुचर है। उसे क्षमा करो।'

'क्षमा क्यों व्रीड़ा', राजकुमारी ने कहा—'यदि वह घायल होकर मूर्छित न हो जाता तो वह, वह मुझे मिलता ही क्यों ? वह आर्य्य है। उसे अपने वर्ण का अभिमान है। विदेशी से प्रीति क्यों करेगा वह ? इसी की जाति ने हमें कुचलने को खड्ग उठाया है। वह ठीक होता तो मैं उससे घृणा करती व्रीड़ा, पर वह पागल है, वह तो कुछ भी नहीं समझता। मैं कहा करती हूँ, उसके पिंगल केशों को एकांत में सहलाती रहती हूँ, पर वह बालक सा अजातशत्रु बना मेरे पाँवों के पास बैठा रहता है...

'किंतु यदि यह किसी को ज्ञात हो गया तो ?'

राजकुमारी काँप उठी। उसने आशंका से देखा। व्रीड़ा गंभीर थी। नीला कुछ सोच रही थी।

आकाश भी उदास था। कोई बाहर गा रहा था।

'व्याकुल मन वेदना इतनी दुस्सह क्यों हो गई कि तू रो रहा है।

'लहरें किनारों से टकरा कर क्यों बिखर जाती हैं, ज्योत्स्ना की मधुर हिलोरें हूकों को बार-बार क्यों सुलगा देती हैं...

'रह रह कर विसुधा तड़पन भर रही है...

'अरे ! वह बातें तो बिना सीखे ही पहचानी सी आ रही हैं।

'ओ विवश हृदय ! कौन सुलझायेगा इसे ? यह तो चिर-अभिमानी की उलझन है...'

'सूने यौवन तू कुछ मत कह, कुछ मत कह...'

गीत धीरे धीरे करुणतम होकर लय होने लगा।

'कैसा मधुर संगीत है !'

'कौन गा रहा है व्रीड़ा देख तो।'

द्वार पर कोई बोल उठा—'जो आँखें खोल कर भी नहीं देख पाता।'

'शिन्थाल !! राजकुमारी पुकार उठी। वृद्ध भीतर घुस आया। उसने मुसकरा कर कहा—'राजकुमारी का हृदय बहुत अनमन है ! क्यों ?'

'नहीं तो शिन्थाल।' कौमार्य्य लाज से दुरने लगा।

वृद्ध हँस दिया, जैसे उसकी आँखों से कुछ भी छिपा नहीं है। राजकुमारी उठ कर बैठ गई। वृद्ध ने कहा—'राजकुमारी ! शिन्थाल के हृदय ने भी कभी किसीके चरणों की लय पर नृत्य किया था। वह क्या बूढ़ा होने से ही जीवन की उच्छृंखलता को भूल सकेगा ? यौवन की आकांक्षाएँ आकाश में बिखरे असंख्य नक्षत्रों से भी अधिक होती हैं, यौवन महानद की उत्ताल तरंगों से भी अधिक भीषण होना चाहता है, किंतु देखा है कभी शतदल पर डबडबाता नीहार कण, वही है यौवन......मानव जीवन की शाश्वत अमरता का एकमात्र क्षण, एक अल्प आभास...'

'अमरता !' नीला ने कौतूहल से कहा—'क्या हो सकता है मनुष्य अमर ! अमर हो सकता है वह ?'

वृद्ध कह रहा—'अधिपति होकर, पुरोहित होकर, कवि

होकर, सेनापति होकर भी मनुष्य इस बदलते हुए संसार में अमर नहीं होता। आकाश में असंख्य तारे हैं किंतु उनसे क्या? रूप तो तभी बिखरता है जब भोर की पहली किरण फूटती है, कलरव साँझ में ही सुहावना होता है नीला। जीवन का एक क्षण जब मनुष्य प्यार करता है, और उसके हृदय में सागर की लहरों की सी टीस उठती है और सुरभिश्लथ मलय की भाँति उसकी व्याकुलता झूम उठती है, केवल वही अमरता है, अमरता—एक क्षण...'

वृद्ध ठठा कर हँस पड़ा। नीला भय से पीछे हट गई। वृद्ध चला गया था। राजकुमारी व्याकुल सी पुकार उठी—'फिर मनुष्य आपस में क्यों लड़ता है...क्या मिलता है उसे...'

किंतु शिथाल उस समय दूर हो गया था।

५

दूसरे दिन जब साँझ की किरनें सिमटने लगीं, नीरवता को तोड़ते हुए व्रीड़ा हँस दी। आज नगर में आतंक छाया हुआ था। वह उसे भूल जाना चाहती थी। सहसा उसने कहा—'देवी पागल आ रहा है।'

'मैं उसे चंद्र कहती हूँ,' राजकुमारी मुसकरा दी।

पागल युवक भीतर आ गया। हर्ष को छिपाते हुए राजकुमारी ने कहा—'चंद्र!'

'स्वामिनी,' पागल ने उत्तर दिया। एक बार उसने अनजान नेत्रों से व्रीड़ा की ओर देखा और अपने स्वभाव के अनुकूल राजकुमारी के पाँवों के पास आकर बैठ गया। राजकुमारी

उसके बालों से खेलने लगी जैसे वह भी उसका पालतू चीते का बच्चा था।

'यह ज्वाला तेरे शीश को जलाती नहीं ?'

पागल ने नहीं समझा। उसने उस अनार्य्य भाषा को सुन कर अबोध नेत्रों से देखा। अभी वह सात आठ शब्द ही सीख पाया था। राजकुमारी ने फिर कहा—'कितना भोला है तू ? अरे यह पिंगल केश।'

नीला और व्रीड़ा ने एक बार एक दूसरी की ओर देखा और फिर वे बाहर चली गईं। एकान्त का सूनापन राजकुमारी के हृदय में धधक उठा।

राजकुमारी ने फिर कहा—'हठीले ! कितना सुंदर है तू ?'

पागल ने सिर हिला दिया।

'पर मेरा हृदय तो जानता है, सच मैं बड़ी अभागिनी हूँ। लोग मुझे राजकुमारी कहते हैं, पर इसीसे क्या मैं हृदयहीन हूँ। बर्बर ! तू यदि पागल न होता तो तू भी मुझसे घृणा करता। तेरी हत्या मैं करूँ ? इससे अच्छा तो यही हो कि मैं देवता की बलि हो जाऊँ जिससे अधिपति और प्रजा का कल्याण हो। वास्तव में तेरा भ्रम ही तेरी सरलता है। सच कह तू कुछ नहीं समझता ?'

चंद्र ने शून्य दृष्टि से देखते हुए सिर हिलाया।

'किंतु यह हृदय तो नहीं मानता, जाने कोई कहता है यह सब कुछ नहीं है। केवल झूठ है, पर अभागिनी तृष्णा चिल्ला उठती है—जल जल, उन्मादिनी तड़प तड़प कर अपनी ज्वाला में आप ही झुलस। मैं तुझे प्यार करती हुँ पागल। नहीं समझता ? उस कहानी का ही क्या जिसका कोई सुननेवाला न मिले। निर्जन

वन की मर्मर को बादल, रसभरा बादल भी क्या समझेगा ? तेरा पागलपन कितना अच्छा है। न होता तू पागल, न होता मेरे मन को बाँधनेवाला बंदी। तब तू आर्य्य होता, हमसे घृणा करता वर्वर ! अच्छा जाने दे। तेरा नाम क्या है ?'

'पागल।'

'ऊँहु। पागल नहीं।'

'चंद्र।'

'नहीं। और बता ?'

पागल ने फिर सिर हिला दिया। राजकुमारी ने हँस कर कहा—'तू आर्य्य है ?'

'नहीं, बंदी।'

'तू मुझे मार डालेगा ?'

चंद्र फिर चुप हो गया। राजकुमारी ने फिर कहा—'मैं कौन हूँ ?'

'स्वामिनी।'

'जायेगा ? यदि वह आ गये तो चला जायेगा ?'

'नहीं।'

राजकुमारी पुकार उठी—'मैं तुझे नहीं जाने दूँगी। आह कितनी मादक है यह संध्या। जीवन वन का मोहक कलरव इस यौवन की जलन क्या समझे ? सभी तो समझदार बनते हैं। मेरे पागल, रह तो, यह ज्वालामुखी क्षण भर शीतल हो सके। लोग कहते हैं राजकुमारी ने आर्य्य को अपने पास रखा है, यह वर्वर संसर्ग अपशकुन है, पर पागल, मेरा हृदय तो कहता है कि ढाल पर आकर धारा के लिये निर्झर बनना ही आवश्यक है,

गाता हुआ सारा उन्माद पिपासा के फेनों से ढँक जाय, चंद्र मेरे जीवन सवर्स्व...'

आनंद को विभोर व्याकुलता में राजकुमारी के नेत्र मुँद गये।

एकाएक उन्मत्त रक्त से भींगी व्रीड़ा ने प्रवेश किया। वह चिल्ला उठी, 'राजकुमारी! तुम्हारे इस बर्बर संसर्ग के कारण ही आज हमारी पराजय हुई है। बर्बर विजयी हुए हैं। जानती हो मेरा निरुद भी मारा गया है। नगर में श्मशान का भीषण दृश्य है। उन्होंने आग लगा दी है। वे बच्चों और बुड्ढों की भी हत्या कर रहे हैं। और तुम? तुम एक बर्बर के अपवित्र शरीर को अपने शरीर से सटा कर...राजकुमारी मन में आता है तुम्हारी हत्या कर दूँ...किंतु...मैं तुम्हें नहीं मार सकती...तुम्हें मेरा मन नहीं मार सकता...एक बार...'

एक बार कटार का फलक चमक उठा और व्रीड़ा ने कठोर स्वर से कहा—'यह कटार बाहर आकर वैसे ही भीतर नहीं जायेगी......इस पागल का रक्त......'

उन्माद के आवेश में वह जोर से हँस उठी। राजकुमारी ने भय से चिल्ला कर कहा—'पागल हो गई है तू व्रीड़ा! नीला! नीला!!'

'नीला अब नहीं रही राजकुमारी। बर्बरों ने उसकी हत्या कर दी है।' व्रीड़ा हँस दी—'वह मर गई है, प्रासाद उपवन सब उजाड़ दिया गया है, बर्बर अब यहाँ भी आ सकते हैं। यह आर्य्य......'

उसने वेग से आर्य्य पर प्रहार किया। बिजली की सी गति

से राजकुमारी की उठी भुजा को काट कर छुरी कंधे में घुस गई। पागल ने व्रीड़ा से छुरी छीन कर फेक दी।

व्रीड़ा ने आर्त्त स्वर से कहा—'राजकुमारी!'

किंतु राजकुमारी ने मुड़ कर कहा—'तुझे तो नहीं लगी चंद्र?'

रक्त बह रहा था। राजकुमारी पृथ्वी पर बैठ गई। उसने काँपते स्वर से कहा—'व्रीड़ा, मुझे भूल जा...'

उसी समय धुँधलके में किसी ने लड़खड़ाते हुए आतुरता से प्रवेश किया। वह शिथाल था—रक्त से नहाया, जर्जर, घायल।

'शिथाल!' राजकुमारी चिल्ला उठी—'यह तुम्हें क्या हुआ?'

वृद्ध दोनों हाथों से पेट को दाबे कराह रहा था। लड़खड़ाते हुए दुर्बल स्वर से उसने कहा—'भागो राजकुमारी! इस बर्बर को छोड़कर भाग जाओ वह आ रहे हैं, यहीं आ रहे हैं......कुल को कलंकित न करो...उन्हें मालूम हो गया है कि राजकुमारी यहीं रहती है...आह...जाओ देवी!' वह काँपने लगा था। क्षीण स्वर से उसने अंतिम बार कहा—'वे बर्बर हैं......'

स्वर अटक गया। वृद्ध गिर गया। व्रीड़ा चीत्कार कर उठी। वह मर चुका था। व्रीड़ा की आँखों में पानी भर आया। उसने करुण स्वर से कहा—'राजकुमारी!!' विषाद की घुमड़ती कसकन में अथाह तड़पन थी।

कितनी ममता ने उसमें अपनी ज्वालाएँ न सुलगा दीं। राजकुमारी ने सुना। रक्त बहुत बह गया था। एक बार उठने का प्रयत्न किया किंतु मूर्छित होकर वहीं लेट गई।

बाहर घोर कोलाहल मच रहा था, पास आ रहा था। कठोर गर्जन करते योद्धा लूटते हुए घुसे चले आ रहे थे। एकाएक द्वार

पर कोई दिखाई दिया। व्रीड़ा चिल्ला उठी। पागल ने खड्ग उठा लिया। अंधकार में कोई भीतर आ गया। पागल ने खड्ग उठाया किंतु इससे पहले कि वह प्रहार करता एक कठोर प्रहार हुआ। पागल सिर पकड़ कर चिल्लाता हुआ लुड़क गया।

प्रकोष्ठ में अनेक आर्य्य घुस आये थे। इनके हाथों में मशालें जल रही थीं। अभी भी 'मारो मारो', 'हटो सामने से' का रव थमा नहीं था। इन लोगों को देख कर उन कठोर योद्धाओं ने हर्ष से चीत्कार किया।

किसी ने गरज कर कहा—'घेर लो इन्हें।'

शीघ्र ही वे रक्त से भींगे खड्ग लिये उन्हें घेरकर खड़े हो गये। सहसा ही पागल चिल्ला उठा, 'ऐ रानी! बृहदाश्व, वह देखो, वह वृक्षों के पीछे द्रविड़ आ रहे हैं, घोड़े मोड़ दो, शीघ्रता करो......'

एक बलिष्ठ व्यक्ति ने उल्का के प्रकाश में झुक कर देखा और कहा—'कौन? श्वेताश्व।'

उपस्थित योद्धा हर्ष से जयनिनाद करने लगे।

बृहदाश्व ने फिर कहा—'हम विजयी हुए हैं।'

श्वेताश्व के मुँह से आनंद से निकला—'पुरंदर......'

बृहदाश्व ने युवक को सहारा देकर खड़ा किया। फिर कहा—'तुम बंदी थे, प्रलोमा ने घृणा से हमसे कटुवचन कहे। किंतु वह बड़ी अभिमानिनी है। तुम्हारे ही लिये यह प्रतिशोध लिया गया है। लोग कहते थे उन्होंने तुम्हें दास बनाया था।'

'दास!' श्वेताश्व ने घृणा से कहा—'आर्य्य! इनका दास!!'

'यह कौन है ?' प्रलोमा ने राजकुमारी की ओर देख कर पूछा। वह पुरुष-सैन्यसज्जा में थी।

श्वेताश्व ने हाथ का इंगित करके कहा—'मैं क्या जानूँ ?'

व्रीड़ा कुछ नहीं समझती थी, किंतु हाथ के इङ्गित ने उसे आभास दिया। कहा—'विजय के दुरभिमान में भूले युवक, एक चोट ने तुझे बर्बर से पागल बनाया था, दूसरी ने तुझे पागल से फिर बर्बर बना दिया।'

श्वेताश्व ने अपनी बंकिम भ्रू को और टेढ़ा करके उसकी ओर देखा और कहा—'यह कौन है बृहदाश्व ! पराजय ने इसे दुर्बल और विक्षुब्ध कर दिया है, क्यों ?'

प्रलोमा ने हँस कर कहा—'डर रही है।'

व्रीड़ा ने घृणा से फिर कहा—'बर्बर ! तुझसे बात करना भी मनुष्यता का अपमान करना है। जानता है वह मूर्छिता भी तेरी कौन थी ?'

राजकुमारी चैतन्य सी बैठ गई थी। एक आर्य्य ने व्रीड़ा को कुछ कुछ समझा। उसने अनुवाद सा किया।

श्वेताश्व ने मुख विकृत करके कहा—'हूँ। अनार्य्य कलुषित रक्त और इसका साहस कि इस स्त्री को मेरा कहे ?'

प्रलोमा ने संदिग्ध दृष्टि से देखते हुए राजकुमारी की ओर उँगली दिखा कर कहा—'तुम सचमुच नहीं जानते यह कौन है ? अग्नि की शपथ कहके कहते हो ?'

'प्रलोमा', श्वेताश्व चिल्ला उठा। 'तुम आर्य्य होकर आर्य्य पर अविश्वास करती हो ? यह नीच स्त्री मेरी हो सकती है ? मैं इसे नहीं जानता, फिर भी इससे घृणा करता हूँ...'

और उसने घृणा से उस पर थूक दिया। राजकुमारी ने देखा और वह व्याकुल सी हँस उठी।

'राजकुमारी !!' व्रीड़ा ने आतंक भरे स्वर से कहा—'तुमने पागल को स्नेह दिया, वह अब तुम्हें नहीं पहचान सकता...'

'राजकुमारी ! कौन ? कहाँ ?' राजकुमारी हँस उठी। पागल की भाँति वह प्रलाप कर उठी—'टूट गई न पतवार ? कहाँ है शिन्थाल ? ओह, वह भी चला गया ! विजय की पताका को भी तो रंग चाहिये न ? रक्त...पागल...'

वह शिथिल हो चली थी।

व्रीड़ा ने एक बार अत्यंत करुण स्वर से कहा—'राजकुमारी !'

'नहीं व्रीड़ा मैं बहुत प्रसन्न हूँ। जानती है क्यों ? क्योंकि मैं आज अमर हूँ ...शाश्वत...'

राजकुमारी का गला भर आया। व्रीड़ा जोर से फफक कर रो उठी। राजकुमारी मर गई थी। फिर सहसा ही व्रीड़ा हँस उठी। उसने एक बार श्वेताश्व की ओर देखा और कहा—'तुम जीते हो ? पर तुम तो अमर नहीं हो......'

किंतु किसी ने भी उसकी बात नहीं समझी। वे सब व्यंग और आनंद से ठठा कर हँस पड़े।

मरघट के देवता

बीमार बच्चे के कमरे से निकल कर दूसरे कमरे में आते हुए डाक्टर जोशी ने डाक्टर नागर से कहा—'तो कहिये टाइफॉइड है? डाक्टर मेरी अक्ल तो बिल्कुल काम नहीं कर रही है।'

डाक्टर नागर ने स्वर की व्यथा को पहचान कर विस्मय से कहा—'आप तो खुद डाक्टर हैं। आखिर इतना घबराने की वजह?' वह उस चंचलता का कारण नहीं समझ पा रहे थे। डाक्टर नागर की पत्नी ने आँखों में आँसू भरे हुए प्रवेश किया।

डाक्टर नागर ने शंकित होकर कहा—'टाइफ़ाइड? याने कि क़रीब २१ दिन?'

डाक्टर जोशी ने झुँझलाहट दूर करते हुए उत्तर दिया—'जी नहीं।'

'तो ग्यारह तो जरूर?'

'ज़रूर ही।' डाक्टर जोशी ने लाचारी में मुसकराते हुए कहा—'आखिर मर्ज़ तो उतरते ही उतरेगा?'

डाक्टर की पत्नी ने करुण स्वर से कहा—'तब तो बच्चा बहुत दुबला हो जायेगा?' उनके स्वर में ममता फफक रही थी।

'आपको,' जोशी ने कहा—'इस वक्त हिम्मत की ज़रूरत है। बिस्तर को झाड़ कर बच्चा ढूँढ़ने की नौबत नहीं आयेगी', डाक्टर हँसा, उसने हाथ हिला कर कहा—'घबराइये नहीं, आपका बच्चा बिल्कुल ठीक हो जायेगा। अगर भगवान ने चाहा तो कोई डर नहीं। हम करने वाले कोई नहीं होते। दवा का असर तो आगे के रास्ते पर चलते हुए मर्ज को सिर्फ उसके ठीक रास्ते पर लगाये रखना ही है न ?'

डाक्टर की बात का महत्त्व खो गया क्योंकि चंपा रो रही थी। उसने आँचल से आँसू पोंछते हुए कहा—'डाक्टर साहब तो अब आप फिर कब आयेंगे ?'

डाक्टर जोशी को ऐसे वाक्य सुनने का काफ़ी अभ्यास हो चुका था। उन्होंने मुसकरा कर तपाक से कहा—'आप जब मुझे बुला भेजेंगी, मैं तभी हाज़िर हो जाऊँगा।'

डाक्टर नागर ने रुक कर कहा—'डाक्टर !'

'वैल ?' जोशी ने आँखें उठा कर पूछा।

'अच्छा,' पत्नी चंपा ने धीरे से कहा।

'जी हाँ', डाक्टर जोशी ने फिर कहा—'बच्चे के कोई ज़ुबान तो है ही नहीं जो वह कुछ कह सके। बेजान ही समझिये उसे, तभी तो उसकी यह हालत है। कितनी तक़लीफ़ है बिचारे को। अब आप ही लोग इसका अंदाज़ लगाये रखिये। वर्ना...'

'वर्ना !' चंपा ने चौंक कर पूछा।

'वर्ना', डाक्टर जोशी को सहसा ही अपनी बात की असंगति का ध्यान आया। उन्होंने बदल कर कहा—'कहा न मैंने कुछ

नहीं। बच्चे के साथ ही साथ आप भी सहने की कोशिश करिये। अच्छा तो आप ज़रा नौकर मेरे साथ भेज दें।'

'अभी लीजिये', डाक्टर नागर ने कहा—'कंपाउंडर बाहर बैठा है, उसे लेते जाइये। और आपकी फ़ीस...उफ़! मैं सब भूला जा रहा हूँ।'

'अजी फ़ीस वीस रहने दीजिये,' डाक्टर जोशी ने हाथ बढ़ाते हुए कहा—'हम तो एक ही व्यापार करते हैं, हमें तो एका रखना चाहिये,...अच्छा......'

डाक्टर नागर ने उनका बढ़ा हुआ हाथ थाम लिया।

जब डाक्टर जोशी चले गये, कमरे में निस्तब्धता छा गई। डाक्टर नागर कुर्सी पर अधलेटे से बैठ गये। एकाएक उन्होंने कहा—'तुम यहाँ क्यों हो? बच्चे के पास कौन है?'

चंपा ने झाँक कर कमरे में देखा और धीरे से कहा—'बच्चा सो रहा है। धीरे बोलो।'

फिर कुछ देर के लिये निस्तब्धता छा गई। डाक्टर नागर ने सिर हिला कर कहा—'घबराने की कोई बात नहीं है। सब ठीक हो जायेगा।'

सौना ने भीतर झाँका। फिर कुछ कहना चाहा, किंतु साहस नहीं हुआ, चुपचाप लौट गया।

चंपा ने बात शुरू की—'इस डाक्टर को तुम खूब जानते हो?'

'हाँ यह शहर का नामी डाक्टर है।'

'तुमने कभी इसकी बीबी से हमारी मुलाकात नहीं कराई?'

'इसके बीबी ही नहीं है।'

'तो?'

डाक्टर ने झुँझला कर कहा—'क्या बिना बीबी के कोई आदमी रह ही नहीं सकता ?'

चंपा ने ध्यान ही नहीं दिया। विषय बदल कर पूछा—'तो यह मर्ज ठीक बता गया है ?'

'लगता तो ऐसा ही है।'

'यह क्या बात कही तुमने ? अभी तुम्हें परवाह ही नहीं है। उधर बच्चा बीमार पड़ा है, इधर तुम्हें ध्यान देने की भी फ़ुर्सत नहीं है ? तुम्हें अपनी प्रैक्टिस में बाधा पड़ने का गुस्सा है।'

डाक्टर नागर ने तिनक कर कहा—'चंपा !'

किंतु चंपा कहती गई—'मैं कहती हूँ कि आख़िर यह मेहनत और कमाई फिर किसलिये ? तुम्हीं एक बिरले हो ? तीन महीने से लड़का एक फाउन्टेनपैन माँग रहा है, लेकिन यह भी एक दिल है जो अपने पेट के जन्मे की ही इच्छा पूरी करना नहीं चाहता। अरे पड़ोस में देखो। सभी जगह बच्चों की खुशी पहले देखी जाती है। वह रहे तहसीलदार साहब। आप रखते हैं पाँच का क़लम, लड़का रखता है पारकर ड्यूफोल्ड।

'आह !' डाक्टर ने व्यंग से मुख विकृत करके कहा—'बड़ा अच्छा नतीजा पाया है। बेटा सिगरेट भी तो पीता है !!'

'उसके लिये क्या है ? आजकल सभी पीते हैं। आख़िर मेरा बेटा दूसरों से हेठा बन कर तो रहेगा नहीं ?'

डाक्टर ने अखिरी तीर मारा—'कल जरा बहू आ जाने दो तब देखेंगे।'

'भले ही कुछ सही,' चंपा ने हाथ फैला कर कहा—'कम से कम एक चुल्लू पानी तो मरने के बाद चढ़ायेगा ?'

'चढ़ा लिये ? मेम लायेगा मेम ।'

'तुम्हें जाने कौन सी दुनिया हमेशा रखनी है, मुझे तो छाती पर धरना भाता नहीं ।'

'नहीं तो पछताओगी ।'

'पछताने को अब क्या कमी है ?'

'देखो जी ।' डाक्टर ने तड़प कर कहा—'मैं भी डाक्टर हूँ और हारी बीमारी के बारे में तुमसे लाख दरजे ज्यादा जानता हूँ । मेरा दिमाग़ न खाओ । अजी अभी उस डाक्टर ने मेरी घबराहट देख कर मुझे सिड़ी ही समझा होगा । मर्ज तो आते वक्त देर नहीं करता । एकदम धर दबाता है ।' उन्होंने हाथ से धर दबाने का इंगित किया फिर ऊपर हाथ उठा कर पूछा—'घर गिरते में क्या देर लगती है ? फिर बनाते वक्त क्या आसानी से बनता है ? चाहे दस लाख मज़दूर लग जाएँ मगर एक मिनट में एक कोठरी भी नहीं बना सकते । अब तो भाग्य में जो है, वही सहना पड़ेगा ।'

बाहर जूतों की खटखट हो रही थी । वह पास आने लगी । चंपा की आँखों में एक स्नेह की चमक काँप उठी ।

डाक्टर समझ गये । उन्होंने मुँह फेर लिया । द्वार पर खड़े होकर हरी ने धीरे से कहा—'अम्मा !'

वह बिल्कुल अपटुडेट था । माँ ने स्नेह से कहा—'हाँ, बेटा !'

'क्या हालत है ?' उसने संदिग्ध स्वर से पूछा ।

'डाक्टर साहब आये थे । टाइफाइड बता गये हैं ।'

'तब तो बड़ी गड़बड़ी है ।'

डक्टर नागर ने सिर हिला कर ऊबते हुए कहा—'वह तो है ही।' जैसे तुम्हें क्या ? तुम तो कुछ करोगे नहीं ?

'कितने दिन लग जायेंगे ?' हरी ने फिर पूछा।

'यही कोई ग्यारह बारह।' डाक्टर नागर ने ऐसे कहा जैसे कोई बात ही नहीं, व्यर्थ क्यों हमदर्दी दिखा रहे हो ?

हरी पिता का रुख समझ गया। मुड़ कर कहा—'वह अम्मा ! वह फोटोग्रुप लेना है न कालेज का ? उसके लिये मुझे ढाई रुपये दे दो।'

डाक्टर ने कुर्सी के हाथ पर हाथ फेरा जैसे वह लाचार था, नितांत विवश।

'ले बेटा', चंपा ने ताली बढ़ाते हुए कहा—'ताली ले ले। अलमारी में से निकाल ले जा, मगर चाबी लौटाना भूल न जाना।'

चंपा ने देखा। वह हँस दी। हरी ने चाबी ले ली और सीटी बजाते हुए दूसरे कमरे में चला गया।

डाक्टर नागर ने भौं सिकोड़ कर कहा—'देखा ?'

चंपा ने उपेक्षा से कहा—'तुम बड़े रूखे आदमी हो जी।'

सौना फिर घुस आया। चंपा ने उसकी ओर देखा जैसे क्या है ?

सौना ने डरते डरते कहा—'बाबूजी।'

डाक्टर नागर ने पूछा—'क्या है ?'

'वह बुढ़िया बार बार आती है।'

'उससे कहो', चंपा ने कहा—'डाक्टर साहब को बहुत काम है। नहीं आ सकते।'

'जी हाँ, मैंने कह दिया।'

'तो,' डाक्टर फिर झुँझला गये।

'वह दो बार आकर लौट चुकी है। कहती है कि इतना रुपया मुझ गरीब से ले लिया है तो एक ही बार, बस नाम के ही लिये एक बार देख जायें।'

चंपा ने कठोर स्वर से कहा—'कह दो जाकर कि डाक्टर साहब उसी का दिया नहीं खा रहे हैं। अच्छे अच्छों की मोटरें खाली लौट जाती हैं।'

'जी हाँ, मैंने कहा था!' सौना ने फिर कहा।

'तुम कहते क्यों नहीं जी जाकर?' चंपा ने क्रोध से कहा।

'जी हाँ, कहने पर रोती थी। कहती थी कि डाक्टर साहब पर बच्चे की ही नहीं, मेरी भी हत्या लगेगी।'

चंपा उठ गई। भीतर जाते हुए कहा—'हत्या और जीवन देने वाले डाक्टर नहीं, जाकर कहो भगवान हैं।'

डाक्टर नागर ने मौन तोड़ा। कहा—'सौना!'

'हजूर।'

'जाकर पानी रखो। पूजा का वक्त हो चला है। उससे कहो फिर कभी आये।'

सौना ने निराश आँखों से देखा।

डाक्टर ने फिर कहा—'सुनो।'

'जी।'

'कहाँ से आई है?'

'पिछवाड़े ही तो रहती है।'

'अच्छा जाओ।'

सौना चला गया।

'सुनती हो।' डाक्टर ने कहा।

'आई' के साथ चंपा फिर कमरे में घुस आई।

'बच्चे का क्या हाल है ?'

'बिलकुल बेहोश सा चुपचाप सो रहा है।'

'आज मैं खाना नहीं खाऊँगा,' डाक्टर नागर ने अन्य-मनस्कता से कहा—'मेरी तबियत ठीक नहीं है।'

'तो कुछ दवा क्यों नहीं खा लेते ?'

'नहीं, मुझे ऐसे ही रहने दो।'

'तुम्हें मेरी क़सम। मुझे दिक न करो। यह एक इल्लत ही काफ़ी है। तुम और काँटे न बोओ।'

'नहीं,' डाक्टर दृढ़ता से बोले—'ज़रा रेशमी दुपट्टा तो निकालो। आज मैं एक हज़ार आठ बार गायत्री का जप करूँगा।'

'लेकिन,' चंपा ने कहा—'ताली तो बड़ा मुन्ना ले गया था ?'

'वापिस नहीं दे गया न ?' डाक्टर ने रूखे स्वर से पूछा।

'लाती हूँ', चंपा ने दब कर कहा—'इतनी जरा जरा सी बात पर क्यों बिगड़ते हो ?'

चंपा भीतर गई। सड़क पर उसी समय कोई कुत्ता भयावने स्वर से रो उठा। डाक्टर के हृदय पर घूँसा सा लगा। उन्होंने कहा—'सौना ! देख तो, इसे भगा दे।'

कुत्ता अभी भी रो रहा था। सौना के चिल्लाने की आवाज़ सुनाई दी, किंतु उसी समय पिछवाड़े शोर गुल होने लगा। डाक्टर क्षण भर सुनते रहे। फिर उन्होंने चेत कर पुकारा—'सौना !'

सौना लौट आया। उसने कहा—'जी !'

'यह क्या शोर है ?' डाक्टर ने ऊबते हुए पूछा।

'सयाना' बढ़िया के बच्चे का भूत उतारने की कोसिस कर रहा है हुजूर।'

डाक्टर के मुँह से फूट निकला—'गँवार !'

एकाएक फिर शोर होने लगा। सौना तेज़ी से बाहर चला गया। चंपा चाबी झुलाती हुई कमरे में आ गई। उसने चाबी देते हुए कहा—'लो !'

डाक्टर ने चाबी ले ली। डाक्टर ने फिर कहा—'सौना ! जाकर कहो कि डाक्टर साहब का बच्चा बीमार है। वह सो रहा है। इस तरह फिजूल के शोर से वह जाग कर तकलीफ़ पायेगा। उफ़ कितनी सर्द हवा चल रही है।' चंपा भीतर के कमरे में चली गई।

'बाबूजी !' सौना ने सिर उठा कर कहा।

'क्या है ?' डाक्टर ने घूर कर कहा।

'बुढ़िया का लड़का तो मर गया है ?'

डाक्टर पर वज्र गिरा। उनके मुँह से फूट निकला—'मर गया ?'

हवा के ठंडे झोंके में उनका शरीर काँप उठा। चंपा चिल्लाती आ रही थी—'आपको कुछ ख़याल भी है ? बच्चे के कमरे की खिड़की खुली पड़ी थी। उफ़ ! सारा कमरा ठंडा हो गया है।' एकाएक पति का रंग उड़ा चेहरा देख कर सहमे स्वर से पूछा—'क्या हुआ ?'

सौना ने फिर कहा—'बुढ़िया का बच्चा मर गया।'

चंपा के मुँह से निकला—'हाय राम ?'

'जी हाँ,' सौना के होठों पर तिरस्कार था।

'उफ़ ! कितने दर्द की बात है। क्या होगा उसकी माँ का ?' डाक्टर नागर का सिर झुक गया।

'मर गया ?' चंपा ने करुण स्वर से कहा—'सच कह सौना ? मेरी छाती पर साँप लोट रहा है। हाय रे।'

तीनों चुप हो गये। पिछवाड़े कोई हृदय फाड़कर रो रही थी जैसे अब उसका सब कुछ लुट गया था।

२

निवेदन—अब यह मानना एक आसान बात है कि डाक्टर का बच्चा भी ठंढी हवा लग जाने के कारण मर जाता है और डाक्टर के घर में हाहाकार मच उठता है।

३

जीवन के खेल—

मस्जिद के मुल्ला ने बाहर निकल कर चारों तरफ़ देखा। कोई नहीं वही पुराना भवानी चेहरे पर नया मुहर्रम लिये खड़ा था। अब्दुर्रहीम पल भर में मस्जिद का बाहरी दरवाज़ा भेड़कर सीढ़ियों पर से उतर पड़े। भवानी नदी के किनारे बीड़ी सुलगाने लगा। मुल्ला ज़ोर से खखारते हुए भवानी के पास जा खड़ा हुआ। भवानी ने दीर्घ दृष्टि से मुल्ला के मुख की ओर देखा। मुल्ला के मुख पर एक कुटिल हँसी खेल गई। उसने कहा—'भवानी ! आज इतना उदास क्यों है ?'

भवानी चुप रहा।

मुल्ला ने फिर कहा—'भवानी, नदी कैसी मस्ता रही है ? देख तो।'

भवानी चौंक उठा। उसने कहा—'दादा! मुझे आज बड़ा सूना सा लग रहा है।'

उसके ढीली उँगलियों में से बीड़ी छूट गई।

मुल्ला ने कहा—'भवानी! दुनिया की खुशियाँ एक दिन इसी मरघट में खेलने आती हैं और हमेशा के लिये परवाने की तरह बरसाती रात में खत्म हो जाती हैं। सुबह तुम ही उस राख को बटोर कर नदी में फेंक देने के लिये व्याकुल हो जाते हो। भवानी क्या सोच रहे हो?'

'मैं,' भवानी ने कहा—'उस चिता की ओर देख रहा हूँ दादा। करोड़पति राजे महाराजे सब चुपचाप यहीं आकर सो जाते हैं। अभी दस मिनट पहले जो आदमी था वह अब मिट्टी है। ज़िंदगी कितनी चलती हुई है? दादा आदमी कितना भूला हुआ है। उसे मालूम है कि दो दिन बाद उसे जिस बदन पर नाज है वह मिट जायगा।'

'लेकिन,' मुल्ला ने हँस कर पूछा—'फिर दुनिया कैसे चलेगी?'

'तो क्या इसी अंत के लिये दुनिया का चलना जरूरी है?' भवानी ने झुँझला कर कहा।

'अंत यह नहीं है', मुल्ला ने विश्वास से कहा—'शुरू और आखिर आदमी के बस की बात नहीं है। यह तो एक खेल है।'

भवानी ने आँख उठा कर मुल्ला की ओर देखा। मुल्ला ने फिर कहा—'भवानी। सब लोग जहाँ से आये हैं वहीं लौट जायेंगे। मैं कफ़न ओढ़ कर जाऊँगा, तुम जल कर जाओगे। मगर उससे क्या? मौत ही ज़िंदगी की आखिरी तमन्ना नहीं है। आदमी दुनिया में आया है आदमी बनने।'

भवानी ने हाथ से इशारा करके कहा—'दादा ! मैं नहीं जानता कि दुनिया में और भी कुछ है। बचपन में चिता जलते देख कर मेरा दिल काँप उठता था। और आज वही मैं इस जवानी में जाड़ा गर्मी बरसात झेल कर इस मरघट में पैसे वसूल करने पड़ा हूँ। बसंत के नये पत्ते, दुनिया कहती है, एक ख़ुशी के दूत बन कर आते हैं, मगर मैं देखता हूँ कि वही पत्ते अचानक ही जलती चिताओं में आ गिरते हैं। दुनिया कितनी जल्दी मरती है ? दादा मैंने यहीं सैकड़ों को जलते देखा है। लेकिन वही मैं अपने बाप की मौत देख कर रो पड़ा था। चिता की गर्मी से अब मेरा दिल नहीं पिघलता। सब मरते हैं और जो जितनी जल्दी मरा वह उतना ही अच्छा है। सारे दुखों से छुटकारा। एक तरफ़ तमाम दुनिया और उसकी ख़ुशियाँ रख लो, दूसरी तरफ़ मेरा अकेला मरघट काफी है।'

मुल्ला कुछ देर सोचता रहा। फिर कहा—'लेकिन दिल को कड़ा कर लेने ही से तो चैन नहीं मिल जाता। इस ज़िंदगी नाम के मुसाफ़िर को तो बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं। भवानी उम्र चाहिये उम्र। तुझमें जवानी का जोश अभी भड़क रहा है। रुपया देख कर तेरी आँखें चौंधिया जाएँगी। औरत देख कर तेरे मन में गुदगुदी हो उठेगी। वही जिलाता है, वही मारता है, जो दुनिया को बना कर बैठा बैठा देखता रहता है। आज से नहीं हमेशा से दुनिया अल्लाह के लिये ही चलती है। वह यह, यह वह, सब जहाँ जाकर एक हो जाते है।'

'वह की नहीं दादा', भवानी ने कहा, 'यहाँ की कहो। पैसा होता तो क्या मैं मरघट में ज़िंदगी बरबाद करता ?'

मुल्ला हँस दिया। उसने व्यंग से कहा—'और तू कहता है कि दुनिया एक चिता है। अर्थी का चंदन, कपाल किरिया का घी खाकर मोटा होना चाहता है अंधे ?'

भवानी ने बात बदलते हुए कहा—'नहीं दादा ! वह देखो ! वह सामने की चिता बुझ चली है।'

मुल्ला मुसकरा दिया। उसने फिर कहा—'लेकिन जानता है अभी यहाँ कितनी चिताएँ और जलनी हैं ? जितनी ज़िंदगी है, उतनी मौत है। न आदमी मरते हुए थका, न कभी जलते और जलाते। भवानी ! अगर बादल बरसेगा नहीं तो करेगा क्या ?'

भवानी के कठोर हृदय पर फिर जाली चढ़ गई। वह मुसकरा उठा।

मुल्ला ने कहा—'मैं अभी आता हूँ। जरा हाथ मुँह धो आऊँ।'

'अच्छा हो आओ।'

मुल्ला चला गया। कुछ लोग एक अर्थी को लेकर आये। एक आदमी पास आ गया।

उसने कहा—'इसे जलाना है।'

भवानी ने कहा—'हाँ, हाँ, तो टाल पर से लकड़ी क्यों नहीं ले आते ?'

आगंतुक एक दूसरे का मुँह देखने लगे। उसी आदमी ने कहा—'यह ग़रीब का लड़का है।'

'लेकिन तुम तो गरीब नहीं हो ?' भवानी ने अविचलित स्वर से कहा।

'हमीं लोगों ने इसका इतना इंतज़ाम कराया है। अनाथ था

यह । कहाँ तक रुपया लगायें ! क्या तुम इसे जलाने भी न दोगे ?'

भवानी ने कहा—'लड़के का ब्याह हो गया ?'

'हाँ दो साल पहले मुँहबोला हो गया है ।'

'तो उससे क्या ?' भवानी ने कहा—'तुम्हारी तो बेकार की ज़िद है । और बिना पैसों के लकड़ी तुम्हें कैसे दे दूँगा ? अपना हाथ बचा कर तुम चिता में आग दे सकते हो, मैं ही घर फूँकने बैठा हूँ ? मेरे मालिक को अगर मालूम हो गया तो ? चुंगी मुफ्त में तो ठेका दे नहीं देती ? उसे तो मरे जिंदे से मतलब है, अमीर गरीब से क्या ? मैं गरीब हूँ । मोल है पैसा । यही सबका मोल है । तुम लोग इसे लाये हो । देखो । मोह मत करो । भरी नदी है, पत्थर बाँध कर डुबा दो । आँख से परे, दुनिया खतम ।'

आदमी ने अपने साथियों की ओर देखा । वे लोग आपस में बातें करने लगे—'कलुआ ! मैं तो पैसे भी नहीं लाया । यह कोई तीन आने हैं बस ।'

'मुर्दा लौटा लेना तो बड़ा असगुन है ।'

'अबे क्या बकरिया है । अब तो ये ही करना पड़ेगा ।'

'हाँ, हाँ, आई विपदा में यह भी धरम है ।'

'ठीक है, डुबा देना ही ठीक है ।'

बात तय हो गई । उन्होंने अर्थी में पत्थर बाँध कर उसे नदी में फेंक दिया । क्षण भर खड़े रहे । फिर चले गये । भवानी ने देखा मुल्ला लौट आया था ।

मुल्ला ने कहा—'भवानी चुप कैसे खड़ा है ?'

'सोच रहा हूँ,' भवानी ने कहा—'अभी तक कोई बोहनी तक

नहीं हुई। दोपहर हो आई। आज जाने परमात्मा इस दुनिया की साइत भूल ही गया ?'

'क्यों ? अभी वह लोग आये थे न ?'

'आया क्यों नहीं। एक आया था। मगर लकड़ी के पैसे माँगने पर कोई न दे सका। अपनी सोचें कि दूसरों की ? मैंने जलाने नहीं दिया। नदी में फेंक गये।'

मुल्ला दर्दभरी आवाज़ में कराह उठा, 'हई अल्लाह ! हई अल्लाह ! हिंदुओं में तो मरे को पानी देते हैं, तू तो आग भी नहीं देता ?'

'पानी तो मेरे को मिल ही गया दादा', भवानी हँस पड़ा। 'मिट्टी,' उसने कहा—'पैसे के मोल चलती है, रियायत के बल पर नहीं।'

'तेरा दिल गवाही देता है ?'

'दिल नहीं है मेरे। दिल के साथ एक पेट भी है।'

ज़ोर से भवानी हँस उठा। समस्त मरघट गूँज उठा, मानों पुरानी हड्डियाँ जाग उठीं। उसने उसी व्यंग से कहा—'राम राम सत्त है, और सब असत्त है।'

मुल्ला ने अपेक्षा से कहा—'बेवकूफ़ ! तू अंधा है।'

भवानी ने कहा—'मौत और ज़िन्दगी में ज्यादा अंधा कौन है दादा ? तुम जाओ। दोपहर की धूप तेज़ होने लगी है।'

मुल्ला खाँसता हुआ लौट पड़ा। भवानी कठोर दृष्टि से दूर शून्य की ओर देखता रहा। ढीली मैली सलवार, स्लीपर, मैला मलमल का कुर्त्ता, काली वास्कट, ऊँची टोपी पहने मुल्ला दाढ़ी पर हाथ फेरता हुआ मस्जिद की सीढ़ियों पर चढ़ने लगा।

मस्जिद जैसे मुसकरा रही थी। आदमी सदा सुख दुख समझने का प्रयत्न करता है, किंतु समझता नहीं।

आकाश गहरा होकर गंभीर हो गया। उस उदासीनता में विश्व का कोलाहल मरघट के देवताओं के मुक्तिगीत को महामाया की धोखेभरी गोद में छिपाने लगा।

४

आक्रोश—बुढ़िया का बेटा पानी में बहा दिया गया। जहाँ कठोरता ही मनुष्य की रोटी है वहाँ जीवन भीख और करुणा पर नहीं चल सकता।

५

स्वर्ग की सीढ़ियाँ—

मरघट में संध्या। एक शव की अंतिम लपटें वीभत्स छाया बुन रही थीं। दो चार गंदे कुत्ते इधर उधर घूम रहे थे। मुल्ला रस्सी में बँधी हंडियों को पानी से भर लाया और एक बुझी चिता पर पानी डालता हुआ, लकड़ी से राख कुरेद कर हड्डियों को बुझाने लगा।

एकाएक मुल्ला ने पुकार कर कहा—'देख तो। रात भर पानी पड़ चुका है। मगर क़सम कि अभी तक आग ठंडी नहीं हुई।'

वह हँस पड़ा।

भवानी ने दूर ही से पूछा—'किसकी लाश है?'

मुल्ला ने मुसकरा कर कहा—'आओ पहचानो तुम।' उसने मिट्टी और राख को कुरेद कर थोड़ा पानी और डाला।

भवानी ने शांति की साँस छोड़ते हुए कहा—'चलो जल तो

गई। बाप रे। डालू कहता था कि हवा पानी ऐसा पहले कभी नहीं पड़ा। एक बार एक साधू अपने कपड़े उतार कर चला गया था। तब भी ऐसा ही तूफ़ान उठा था।'

मुल्ला ने आश्चर्य्य से कहा—'डालू पक गया और जमादारी उसने यों ही तो की है। तभी लड़का मर गया।'

'अरे सो कोई मोल नहीं। उसकी भला क्या बात ?'

मुल्ला ने इधर उधर देख कर कहा—'टाल पर कोई नहीं है ? क्यों ? जा तो चंदा देख।' और पलट कर चिल्लाया—'अरे साले कुत्ते...हट...तेरी...'

एक ढेला उठा कर मारा। भवानी टाल की ओर बढ़ गया। मुल्ला गुनगुनाने लगा—'मौत का एक दिन मअईयन है'

'नींद क्यों रात भर नहीं आती ?'

पीछे खाँसी की आवाज़ सुनाई दी। धूमिल सा गंभीर वृद्ध, डालू, सफेद दाढ़ी, मुर्गी की दुमनुमा, चिकनी, मूंछें साफ़। जुल्फें नदारद। बाल कटे व गालों की उठी हुई हड्डियाँ। गड्ढे में चमकती हुई आँखें। उसने खखार कर थूक कर पूछा—'मुल्ला ! बूढ़ा फ़क़ीर कहाँ गया है ?'

मुल्ला ने हाथ रोक कर सिर ऊपर उठाया। कहा—'जमादार ! आज तो वह कुछ नाराज़ सा था।'

'हाँ', डालू ने सिर हिला कर स्वीकार किया—'भवानी ने उससे पूछ पूछ कर उसे कल नाराज़ कर दिया है। फिर भी कुछ कह गया है ?'

'मैंने कहा था—बाबा बता दो। उसने कहा—क्या जानेगा बोल ?'

मुल्ला ने चलते चलते हँस कर चिताओं की ओर इशारा किया और कहा—'अच्छा! इतने दीपक जल तो रहे हैं।'

डालू ने घूर कर देखा। क्षण भर चुप रहा फिर आवाज़ लगाई—'भवानी! ओ भवानी!!'

भवानी पास आ गया। पूछा—'जमादार बुलाया था?'

'हाँ। तनिक बता दे वे कहाँ गाड़ने गये हैं?'

'उहाँ', भवानी ने उँगुली से इंगित किया।

डालू ने देखा। कहा—'ओह! अच्छा तो रोटी बना ले भाई। मरघट में क्या धरम छोड़ना होगा? तू तो बिगड़ चला। मुल्ला के साथ ही खा रहा था परसों। राम! राम!!'

'क्या हो गया जमादार।' भवानी ने हँस कर कहा—'तुम घिस न गये, मैं घिस न गया। रहे वही के वही।'

'अबे चल रहने दे। मुझे यही बातें अच्छी नहीं लगतीं। कल ही ब्याह को मना करता था!'

'ब्याह किस लिये जमादार? अगर रोटी की कठिनाई हो तो बात है, वैसे तो......'

'हाँ, हाँ, मुझे ही शौक है न औरत रखने का? अरे देख लिहाज कर।' बूढ़े ने दाढ़ी पर हाथ फेरा। भवानी मुसकराया। डालू कह रहा था—'तेरे भले के लिये ही कहता था।'

'क्यों जमादार?' भवानी ने कहा—'इस ज़िंदगी के लिये एक डकैती करने की ज़रूरत पड़ेगी?'

'डकैती कैसी?' डालू ने चौंक कर पूछा।

'बच्चों से कहना पड़ेगा राम रहीम अलग अलग हैं। यहाँ

तो मुझे कोई फरक नहीं लगता।' और उसने चिता की ओर इशारा किया।

'अरे सब फिजूल बक रहा है,' डालू ने दृढ़ स्वर से कहा—'दो दिन की जवानी है, फिर झुक जायेगा। दो लकड़ी भी आड़ी तिरछी न ठोंक सकेगा। तुझे यहाँ दुख मिलता है? मौत से डरता है? हम तो फूल चढ़ाते हैं पागल! भोले! औरत से डरता है?'

'मैं डरता नहीं। फिर भी तुम्हारी बातों से दहशत सी जरूर होती है।'

डालू ठठा कर हँस पड़ा। मुल्ला वहीं आ गया। उसने कहा—'जमादार! मैं तो इससे दीपक जलाने को कह गया था। इसी ने नहीं जलाया। कहता था जिसे भूत होना हो वही भूतों की सेवा करे।'

'अरे तूने ही बिगाड़ा है इसे।' डालू ने सिर हिला कर कहा।

'लेकिन तुम हँसते क्यों थे?' मुल्ला ने पूछा।

डालू ने हँस कर कहा—'शादी करने से डरता था।'

'क्यों रे?' मुल्ला ने भवानी से कहा—'शादी कर ले। यहाँ से जला कर जाया करियो। दो पल हँसियो और फिर नई चिताओं के लिये तैयारी कर डालियो।'

'वही तो', भवानी ने मुसकरा कर हाँ में हाँ मिलाई—'ब्याह करके क्या होगा? आदमी पाप कर के जाये, दुनिया को और पापी बनाने?'

'वह पाप नहीं है रे,' डालू ने उपेक्षा से कहा—'क्या तू अपने कंधों पर दुनिया भर को सँभाले है? बड़ा प्यादा है न?'

'जमादार !' मुल्ला ने सिर मटका कर कहा—'प्यादे से फर्जी हुआ टेढ़ा टेढ़ा जाय।'

और मुल्ला और भवानी हँस पड़े।

'जमादार !' मुल्ला ने फिर कहा—'इसने कभी औरत के दिल पर हाथ नहीं रखा। तभी ऐसा कहता है।'

'चुप गधे सूअर,' डालू बिगड़ कर चिल्ला उठा—'अपने बाप से मज़ाक कर रहा है ?'

'बाप रे,' मुल्ला ने ताली बजा कर कहा—'मज़ाक कैसा ?'

'माँस खा खा कर तेरी अकल में चर्बी चढ़ गई है। तेरी भी कोई ज़ात है जो ?' डालू का क्रोध अभी शांत नहीं हुआ था।

'मेरी कोई जात नहीं।' मुल्ला ने व्यंग से कहा—'और तुम तो बामन के साथ बैठ कर खाते हो ?'

'अरे मुल्ला,' भवानी ने कहा—'जमादार पत्थर का है। इसका तो दिल कर्रा पड़ गया है। बाढ़ के जमाने में जब लोग मुर्दे को झटके से उछाल कर पानी में फेंक देते थे, मेरा तो दिल काँप उठता था।' कहते कहते वह सिहर उठा।

'अरे भली कही,' मुल्ला ने कहा—'बुड्ढा जवान हो गया था। बिना देखे ही खुद मुँह में आग भर देता था।'

'किसी के मुँह में रे', डालू ने कहा—'मिट्टी में तू चूल्हा नहीं जलाता ? कह न डरता है ? बक बक लगा रखी है।'

उस समय किसन उसी व्यक्ति के साथ लौट आया। उसने फिर उसी घरघराती आवाज़ में कहा—'जमादार काम हो गया।'

डालू उठ कर खड़ा होते हुए बोला—'भगवान खैर करे।

बाबू दुख न करो।' और एक सूखी सी हँसी उसके होठों पर रो उठी।

व्यक्ति ने किसन की ओर देख कर कहा—'क्या......'

डालू के फैले हुए हाथ पर बटुए में से निकाल कर तीन आने रख दिये और किसन से कहा—'ऐ! ज़रा उनसे कहो नल पर चलें। कहीं नहाने का घाट है?'

डालू ने कहा—'बाबू अब और क्या कहें। आपकी मर्जी है।'

व्यक्ति ने एक आना और रख दिया। डालू ने झुक कर सलाम की और कहा—'भगवान आपको यहाँ कभी न लाये। किसन!! अरे हाँ नल!! भैय्या पास ही है, नदी की धारा के किनारे ही।'

व्यक्ति चला गया। डालू भी टाल की ओर चल पड़ा। जब वह चला गया खुल कर बातें होने लगीं।

'अरे बड़ा काइयाँ है। मेरा दिल तो ऐसा नहीं है।'

'पेट का भाव है मुल्ला। सौदा कठिन है। इस बजार में तो सभी को सुख मिलता है। यहाँ कौन नहीं आता।'

'अरे!' मुल्ला ने मुँह विकृत करके कहा—'ये वही है जो रेशम से सोने की जरी खोद कर निकाल लेता है।'

'जाने दो' भवानी ने कहा—'अपना अपना ईमान है।'

उसी समय मुल्ला ने चौंक कर कहा—'यह कौन है?'

मुड़ कर देखा। डालू और एक आदमी। दोनों इधर ही आ रहे थे। फिर वे रुक गये।

भवानी ने कहा—'अरे यह तो कल उस बच्चे को दफ़ना गया था न? वही तो है यह?'

'हाँ है तो वही। कैसा मुरझा गया है?'

'क्या है ?' भवानी ने उत्सुकता से कहा—'पूछें न ?'

'अरे ठहर,' मुल्ला ने कहा—'देख तो। डालू रो रहा है। बात क्या है ? आदमी भी रो रहा है ?'

भवानी विस्मित हो गया था। उसने धीरे से कहा—'कुछ खास बात लगती है। आज से पहले तो डालू कभी रोता हुआ दिखाई नहीं दिया।'

अभी वह देख ही रहे थे कि डालू आ गया। मुल्ला ने आगे बढ़ कर दूर पहुँचे हुए उस आदमी की ओर इंगित करके पूछा—'क्यों जमादार ! यह आदमो यहाँ फिर क्यों आया था ?'

'मुल्ला। तू जीत गया। मैं हारा हूँ।' उसकी आँखों में पानी छलक आया था। 'यह बच्चे कितना दुख देते हैं। पता भी नहीं पाते कि वे सदा के लिये करवट ले गये।'.

हिचकियों ने उसके कंठ को अवरुद्ध कर दिया।

'आखिर बात क्या है ? मुल्ला ने विस्मय से आँखें फाड़ कर पूछा—'कहो न ?'

'कहता था बच्चा बड़ा प्यारा था। देखा था किसन ?'

किसन ने घरघराती आवाज़ में कहा—'याद नहीं पड़ता जमादार। कल तो कई बच्चे आये थे।'

'कल', डालू ने फिर कहा—'उसके घर में बच्चे की माँ को सपना हुआ कि बच्चा ज़िंदा हो उठा है। सो आज वह यही पूछ रहा था। आह ये बेदिल बच्चे। मैंने कहा—'बाबू ! बहुत प्यारा होगा ?'

'तुमने जाना डालू जमादार ?' मुल्ला ने कहा—'सबके दिल होता है। अरे मौत पर तो जानवर भी रो देते हैं।'

'धरम है मुल्ला। इन्हीं के लिये एक ब्याह, जैसे वे ही पुन्न

है'...सुरग की सीढ़ियाँ, भवानी के शब्दों में विक्षोभ फूट पड़ा—'जमादार! फिर तुमने क्या कहा ?'

डालू ने कहा—'मैंने ? वही कहा जो कह सकता था।'

सब उसकी ओर देख उठे। डालू अपनी जलती आँखों में शून्य दृष्टि लिये बड़बड़ा उठा—'भगवान किसी को बच्चे न दे। माँ बाप को नरक ही भला हो।'

वह ज़ोर से खाँस उठा।

६

मर्म की वेदना—डाक्टर का बच्चा जीवित नहीं हो सकता। यहाँ पर सब एक हैं। किंतु यहीं जीवन का अंत नहीं है। मैं मरघट से पराजित नहीं हूँ।

गुलाम सुल्तान

किले की एक बुर्ज के सामने की छोटी छत काई से काली हो चुकी थी। पीछे की ओर ऊँची ऊँची डोरियाँ थीं जिनमें अलग अलग सूराख बने थे। बुग़रा खाँ धीरे धीरे टहल रहा था। रात के घंटे बज उठे। बाहर बाजे बजने लगे। बुग़रा खाँ चौंक उठा।

अरे! आधी रात बीत चली। उसने ऊपर देखा। तारे! क्या जाने यह हृदय का गीत? न जाने कितने वर्षों से निमर्म मूर्खों की भाँति घूम कर भी इनका वैभव टिमटिमाने से आगे नहीं बढ़ा। बहुत रो बहुत टूट गये। निरीह।

बुग़रा खाँ हँस दिया। और फिर उसने मनही मन कहा—ओह आज की रात कितनी निस्तब्ध है। निःशब्द सा गहरा आकाश, सनसनाती वायु। किसी में भी इतना मोह नहीं कि क्षण भर ठहर कर प्यार कर ले। केवल दौड़, केवल दौड़... और एकाएक उसके मुँह से शब्द निकल पड़े—अरे अभी तक नहीं आई?

और एक एक क्षण भारी हो चला।

न जाने क्यों आज हृदय इतना व्याकुल हो रहा है। किले में आज किसी के भी हृदय में शांति नहीं है। सब डरे डरे से। क्योंकि सुल्तान ने आज अपना पाँव रखा है। आज किले पर उनके स्वागत को नगाड़ा बजा था। आज विजय का भार उनके ताज का प्रकाश बन कर फैल गया है। और बुग़रा खाँ कमला से भी स्वतंत्रता से नहीं मिल सकता। क्योंकि वह एक हिंदू है इस्लाम का अनुयायी केवल अपने धर्म की स्त्री से प्रेम कर सकता है। क्योंकि बिना धर्म बदले मनुष्य के रूप में स्त्री भी स्त्री नहीं रहती।

वह हँस उठा। फिर नीरवता छा गई। एका एक बुग़रा खाँ चौंक उठा। एक हल्की पगध्वनि हो रही थी। उसने धीरे से कहा कौन? कौन है यहाँ?

'मैं हूँ शाहज़ादे।'

बुग़रा खाँ ने व्याकुल स्वर से कहा—'तुम आ गईं कमल? मैंने तो समझा था कि तुम नहीं आओगी।'

'क्यों?'

'क्यों कि आज सुलतान आये हैं न? आज बंगाला फतह हो गया है। इसकी प्रसन्नता में हम तुम छिप कर मिल रहे हैं।' और वह व्यंग से हँस दिया।

कमला ने दीवार से पीठ टेक कर कहा—'आप नहीं जानते मैं कितनी छिप कर, बचती हुई, यहाँ आई हूँ। मुझे जल्दी ही लौट जाना होगा।'

'कमल, मन नहीं करता कि तुम मुझे छोड़ जाओ और मैं

चुपचाप देखता रहूँ । तुम्हें देख कर मेरे हृदय की भयानक आग भी ठंडी हो जाती है। बहुत प्रयत्न किया कि तुमको भूल जाऊँ किंतु असफल रहा। कोई कहता था तुम शाहजादे हो। तुम्हें किसी की भी क्या कमी ? स्त्री तुम्हारे गुलदस्ते का केवल एक फूल है। लेकिन मन ने स्वीकार नहीं किया। तुम्हारे सामने मैं सदा पराजित के रूप में उपस्थित हुआ हूँ, और उच्छ्वसित आवेश में बुग़रा खाँ ने कमल के हाथ पकड़ लिये। अंधकार में हवा चलने लगी थी।

आज आप इतने व्याकुल क्यों हैं ? सुल्तान तो यहाँ सदा नहीं रहेंगे। उनके चले जाने पर हम फिर स्वच्छंदता से एक दूसरे से मिल सकेंगे।

'लेकिन,' बुग़रा खाँ ने कहा—'मैं एक बात सोचता हूँ। वह मेरा हृदय भीतर ही भीतर खाये जा रही है।'

कमला ने उत्सुकता से पूछा—'वह क्या शाहज़ादा ?'

'तुम जानती हो,' बुगरा खाँ ने कहा—'सुल्तान एक कठोर प्रकृति के शासक हैं। फिर भी वह महमूद को जितना चाहते हैं उतना अपने इस छोटे बेटे को नहीं। मैं जन्म भर तुम्हें कभी भी विवाह करके सुखी नहीं कर सकूँगा। तुम अपने हिंदू पिता की एक मात्र संतान हो। इसलिये तुम तो इस्लाम स्वीकार नहीं कर सकती। मैं हिंदू नहीं हो सकता। और मैं सुल्तान का बेटा होने के कारण एक साधारण हिंदू स्त्री से विवाह नहीं कर सकता। तो क्या यह प्रेम कुछ दिन का छिपा हुआ पाप मात्र ही है ?'

और विषाद से आर्त्त हृदय अपनी विवशता की घोर कचोट में हँस पड़ा। कमला पास आ गई। उसने शंकित स्वर से पूछा—

'मैं सदा तुम्हारी हूँ मेरे ख़ान। मैं तुम्हें चाहती हूँ इसलिये नहीं कि तुम सुल्तान के बेटे हो। किंतु एक बात पूछूँ?'

'पूछो कमल।'

'क्या जीवन भर हम तुम ऐसे ही एक दूसरे से नहीं मिल सकते? मैं इससे नहीं डरती कि तुम विवाह कर लोगे और अपने सुख में सब कुछ भूल जाओगे। शाहज़ादा मुझे भूल जाये किंतु ख़ान नहीं भूल सकेगा। मेरा प्रेम तुम्हें कभी भी नहीं भूल सकता। जीवन भर तुम मेरे सामने बने रहो, मैं तो दासी होकर ही सुखी हूँ।'

'उफ़! तुम क्या कह रही हो! मैं सोच सोच कर पागल हुआ जा रहा हूँ कमल, किंतु कुछ भी नहीं सुलझ पाता। जीवन भर हम एक दूसरे से प्रेम करेंगे। आस्मान के तारे देखेंगे कि मैं तुझे कभी भी नहीं छोड़ूंगा।'

'अब मैं लौट जाऊँ? मुझे फिर छिप कर आना होगा।'

कमला भय से हाथ छुड़ा कर हठात् पीछे हट गई। उसके मुख से फूट निकला—'सुल्तान!!'

बुग़रा खाँ स्तंभित सा खड़ा रहा। सुल्तान बल्बन सामने आ गया था। उसके खल्वाट शीश को देख कर लगता था कि वह धातु का बना है। पीछे ही अंगरक्षक फीरोज़ था।

सुल्तान ने एक बार गूढ़ दृष्टि से कमला को घूर कर देखा और कहा— मैं हूँ तुम्हारा सुल्तान। चौंकते क्यों हो बुग़रा खाँ? बूढ़ा हो गया हूँ न? रात को जल्दी नींद नही आती। इसी से सोचा कुछ घूम कर देखूँ। तुमने तो किले में कमाल का पहरा रखा है। इधर तुम न होकर मुझे कोई दुश्मन ही मिल जाता।

तो क्या तुम अपने पिता को जीवित देख पाते ?'

बुग़रा खाँ ने सिर झुका कर कहा—'सुल्तान ! किले में कोई बाहर का आदमी नहीं घुस सकता।'

'बाहर का आदमी,' सुल्तान ने मुसकरा कर कहा—'आज पत्थरों में नहीं, सुल्तान के ख़ान्दान में घुस गया है।'

'मैंने आपका मतलब नहीं समझा।'

सुल्तान बल्बन ने कठोर स्वर से कहा—'इधर आ लड़की। मैं तुझे देखना चाहता हूँ।'

कमला ने देखा। बुग़रा खाँ सिर झुकाये खड़ा था।

'आओ !' स्वर फिर गूँज उठा।

कमला ने एक बार व्याकुल दृष्टि से देखा और फिर आगे खड़ी हो गई।

सुल्तान ने फिर कहा—'तेरा नाम ?'

कंठ अवरुद्ध हो गया। केवल कहा—'कमला।'

बल्बन ने मुड़ कर कहा—'फ़ीरोज़ !'

फ़ीरोज़ ने झुक कर कहा—'सुल्तान ?'

सुल्तान ने सिर हिला कर कहा—'लड़की निडर है। सुंदर है। पर मैं सोचता हूँ यह ठीक नहीं है।'

फ़ीरोज़ ने उसी तरह कहा—'आपकी बात हुक्म बनती है।'

सुल्तान ने उसकी बात पर कोई ध्यान न देकर बुग़रा खाँ से कहा—'यह तुम्हारी कौन है, बुग़रा खाँ ?'

बुग़रा खाँ का सिर और झुक गया। वह कुछ भी नहीं कह सका। तब कमल ने सिर उठा कर कहा—'मैं इनकी दासी हूँ।'

'लेकिन,' वृद्ध ने कहा—'सुल्तान का बेटा दासी से अकेले में

छिप कर तो नहीं मिलता। तुम अवश्य मुझसे छिपा रही हो। पर सुल्तान बल्बन ने अपने उन्तालीस कट्टर दुश्मनों को मूर्खता से हरा कर हिंदुस्तान की रक्षा नहीं की। सल्तनत में कोई ऐसा काम नहीं जिसे बल्बन नहीं जानता। इंसाफ़ के लिये मैंने कभी भी रियायत करना नहीं सीखा। निडर होकर मुझसे कहो। तुम किसकी बेटी हो ?'

'जयपाल के पुत्र सामंत कुमारपाल मेरे पिता हैं।'

'जो,' सुल्तान ने वाक्य की समाप्ति के साथ ही वाक्य प्रारंभ कर दिया—'बीमारी के कारण मेरे बुलाने से मेरे हकीमों से इलाज करवाने को किले में पड़े हैं, और उनकी पुत्री उनकी यहाँ सेवा कर रही है। और तुम बुग़रा खाँ ? अपने माँ बाप के दोस्त को मौत के बिस्तर पर पड़ा देख कर भी यही कर सके ? धिक्कार है तुम पर।'

किसी की पगध्वनि सुन कर वृद्ध चुप हो गया। उसने कहा—'फीरोज़ !'

फीरोज़ ने आगे बढ़ कर कहा—'कौन है ?'

उत्तर आया—'हैदर।'

अधेड़ व्यक्ति बलिष्ठ था। उसने झुक कर सलाम किया।

सुल्तान ने पूछा—'इस वक्त ?'

'आपका हुक्म था। मैं अभी आपको जगाने गया था। लेकिन जासूस ने बताया कि आप यहाँ थे।'

एकाएक सुल्तान ने काट कर कहा—'हम तुमसे खुश हैं बुग़रा खाँ। किले के मालिक की सब पर आँख रखनी चाहिए।' फिर कहा—'हैदर। बयान जारी रहे।'

'हिंदू सामंत मागंधपाल और उसकी बीबी बिंदुमती, दोनों को ही मैं गिरफ्तार कर लाया हूँ ।'

वृद्ध सुल्तान ने कहा—'शाहज़ादा सोच रहा है कि यही किसी को बुलवाने का कौन सा वक्त है। बुलाओ हैदर !'

हैदर सिर झुका कर चला गया। क्षण भर के लिये असह्य नीरवता छा गई। कुछ देर बाद मागंधपाल और बिंदुमती ने सुल्तान को झुक कर सलाम किया। सैनिक पीछे हट कर खड़े हो गये। हैदर ने धीरे से कहा—'सुल्तान !'

बल्बन कठोर सा खड़ा रहा।

हैदर ने कहा—'बिंदुमती और मागंधपाल हाज़िर हैं सुल्तान। वे आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

बल्बन ने कहा—'मागंधपाल तुम राजभक्त हो। मैं तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हुआ हूँ। आज तुमने बंगाले की बग़ावत का दमन करने में मेरी सेवा की है। मैं तुम्हें राजा बनाता हूँ ।'

मागंधपाल का सिर झुक गया। जैसे वह आनंद और दुख की द्वंद्वभरी चोटों को सहने में असमर्थ हो गया था। सुल्तान ने उसकी व्याकुलता को देखा और वह कहता गया, 'लेकिन बिंदुमती ! तुमने सोचा था कि रज़िया के बाद तुम ही सुल्ताना बनोगी। तुम ने समझा कि तुग़रिल खाँ सदा के लिये बल्बन को समाप्त करके सुल्तान बन जायेगा। वह देखो।' और सुल्तान का हाथ दीवार की ओर उठ गया। फीरोज़ एक क़दम आगे बढ़ आया।

बिंदुमती ने भयार्त्त नयनों से दीवार के छेद में से झाँका। बल्बन कहता रहा—'देख रही हो उन मशालों की रोशनी में ? सूली पर टँग कर आदमी कितना सुंदर लगता है। वह है राज-

दंड।' जैसे बात दो टूक हो गई। बल्बन ने फिर कहा—'अपने स्वामी से विद्रोह करके कोई भी बचा नहीं रह सकता। आज तुम इन कुत्तों की मौत मरते इन्सानों को देख कर नहीं पहचान सकतीं कि कल ये बड़े बड़े जागीरदार और राजा थे। लेकिन बिंदुमती! तुम्हारे पति को मैंने आज राजा बनाया है। और तुम?' सुल्तान का हाथ गिर गया।

बलिष्ठ मागंधपाल ने सिर झुका कर कहा—'सुल्तान, वह स्त्री है। क्षम्य है।'

वृद्ध ने दृढ़ स्वर से कहा—'स्त्री होने से ही वह क्षम्य है ऐसा सोच कर तुम भूल कर रहे हो मागंधपाल। स्त्री तब स्त्री होती है जब वह चाँदनी रात में पुरुष के आलिंगन में होती है, स्त्री तब स्त्री होती है जब वह बच्चे को अपनी गोद में धर कर दूध पिलाती है, लेकिन स्त्री तब स्त्री नहीं रहती जब वह तख्त और ताज के प्रलोभन के लिये अपने पति को धोखा देकर, दूसरे व्यक्ति से अनुचित संबंध रख कर, अधिकार, केवल अधिकार के लिये, राजशक्ति के लिये, कूटमंत्रणा करके षडयंत्र रचाती है। क्या तुम ऐसे व्यक्ति के लिये क्षमा की प्रार्थना कर रहे हो? आज तुम एक राजा हो। क्या तुम इसी प्रकार अपनी प्रजा से न्याय करोगे मागंधपाल? कल तुम्हारी पत्नी तुम्हें भोजन में विष मिला कर देने का प्रबंध करेगी और तुम निर्जीव से कहोगे कि स्त्री होने से वह क्षम्य है।'

मागंधपाल निरुत्तर था। उसने कहा—'सुल्तान से विवाद करके मैं स्वयं अपना विश्वास खो रहा हूँ।'

'तुम जानते हो', सुल्तान ने पूछा—'इसका तुग़रिल से अनुचित संबंध रहा है ?'

'नहीं सुल्तान !' मागंधपाल का स्वर काँप उठा। उसने मुड़ कर कहा—'बिंदुमती ! तुम ? तुम ?? उफ़, सुल्तान आपके पास कोई प्रमाण......'

किंतु वृद्ध ने काट कर कहा—'प्रमाण ! सुल्तान कभी प्रमाण नहीं देते। किंतु मैं तुमको फिर भी बता सकता हूँ। तुग़रिल और बिंदुमती आज से तीन दिन पहले इसी ठौर पर छिप कर इसी समय मिले थे।'

बिंदुमती मुँह ढाँक कर रो उठी। मागंधपाल ने तड़प कर कहा—'और शाहज़ादा आप, आपने कुछ नहीं कहा ?'

सुल्तान ने उसी स्वर से कहा—'शाहज़ादा उस समय क़िले के पश्चिमी बुर्ज पर अपनी इसी प्रेयसी कमला की प्रतीक्षा कर रहे थे।'

बुग़रा खाँ का सिर झुक गया। मागंधपाल का स्वर कंठ में ही भिंच गया। वह कुछ भी नहीं कह सका। फीरोज़ ने धीरे से कहा—'सुल्तान ! वक्त बहुत हो गया है।'

बल्बन ने कठोर स्वर से कहा—'आतुर न बनो फीरोज़।'

फीरोज़ फिर पीछे हट कर खड़ा हो गया।

'हैदर', सुल्तान ने कहा, 'वह कुत्ता पकड़ लिया गया ? उसको ले आओ।'

हैदर ने कहा—'जो हुक्म।'

जब वह चला गया सुल्तान ने कहा—'शोक न करो मागंधपाल ! स्त्री एक अस्थिर और चंचल वस्तु है।'

'सुल्तान', मागंधपाल ने कहा—'मैं आप से एक भीख माँगता

हूँ। बिंदुमती को क्षमा, किया जाये। मैं उससे प्रेम करता हूँ।'

'तुम मोह में फँसे हुए हो मागंध। वह स्त्री नहीं है, राक्षसी है। निर्बल और भीरु ही अंधकार की शरण माँगता है, आँख खोल कर वीरता से खड़ा होने वाला योद्धा अंधकार से घृणा करता है मागंध!' सुल्तान का स्वर कठोर हो गया था। इसी समय हैदर ने सेवकों के साथ प्रवेश किया। रस्सियों से बँधा हुआ तुग़रिल खाँ उनके बीच में था। इस समय उसके हाथ खोल दिये गये थे।

हैदर ने बढ़ कर कहा—'तुग़रिल खाँ हाज़िर है सुल्तान।'

'ठीक है। लेकिन तुमने उसे सुल्तान की इज्जत करने की तमीज़ नहीं सिखाई।'

हैदर ने गर्व भरे स्वर से कहा—'तुग़रिल खाँ! अभिवादन करो।'

तुग़रिल सीधा खड़ा रहा। मागंधपाल ने कहा—'सुल्तान यह उद्दंड है।'

तुग़रिल ने सिर उठा कर कहा—'बगावत करके तुग़रिल खाँ लज्जित नहीं है। खोखरों और मंगोलों के छक्के छुड़ाने वाला अपने भुजदण्डों के बल पर बंगाले का सूबेदार बना था। जीत कर भलेही सिर नहीं उठाता, किंतु पराजित होकर सिर झुका जाये तुग़रिल खाँ ऐसा कायर नहीं है।'

बल्बन ने गंभीर स्वर से कहा—'लेकिन तूने उसी हाथ को काटने का प्रयत्न किया जिसने तेरे मुँह में रोटी रखने की करुणा दिखाई थी। तू भले ही भूल जाये लेकिन मैं नहीं भूल सकता कि एक दिन बल्बन ने तुग़रिल को तलवार चलाना सिखाया था।

और तूने उसी नाव में छेद करना चाहा जिस पर बैठकर तू लहरों की छाती फाड़ता आगे बढ़ रहा था ?'

'तुम्हारा जीवन ही', तुग़रिल ने दर्प से कहा—'मेरे विद्रोह का कारण रहा है। मैंने सोचा था कि यदि तू एक गुलाम से सुल्तान हो सकता है तो मैं क्यों नहीं हो सकता ?'

'राजशक्ति प्राप्त करना कोई खेल नहीं है तुग़रिल,' वृद्ध सुल्तान हँस दिया, 'सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद एक बालक था जब सुल्तान इल्तुतमिश का स्वर्गवास हुआ था। बल्बन ने कभी अपने स्वामी पर प्रहार नहीं किया।'

'लेकिन तुम प्रतीक्षा कर रहे थे,' तुग़रिल ने सिर हिला कर कहा, 'तुमने एक एक करके अपने उन्तालीस साथियों को मरवा दिया और आज मेरे सामने यह ढोंग कर रहे हो कि तुम्हें राज्य का लोभ नहीं था ?'

बल्बन ने सुना। वृद्ध के मुख पर एक भी विकार नहीं आया। उसने दोनों हाथ फैला कर कहा—'बल्बन के अतिरिक्त उस समय कोई भी प्रजा को सँभालने में असमर्थ था। सुल्तान नसीरुद्दीन महमूद ने एक दिन इसी बल्बन को राज्य से निकाल दिया था, किंतु उसी दिन उसी क्षण सल्तनत में जगह जगह आग लग गई थी और आज तू बल्बन को अपने प्रलोभन के जाल में फँसा हुआ राज का लोभी कह रहा है।'

'लेकिन,' तुग़रिल गुर्रा उठा—'मैं कायर नहीं हूँ।'

वृद्ध सुल्तान अब के हँस दिया। उसने कहा—'और यह स्त्री जो सामने खड़ी है उसका सतीत्व लूटना वीरत्व है ? बालक और स्त्री को सोने की चमक दिखा कर पागल बना देना वीरता है।

जुगनू की ज्योति को सूर्य्य का आलोक कह कर बहकाना साहस है ? मागंधपाल !'

मागंधपाल उद्यत नहीं था। एकदम चैतन्य होकर उसने उत्तर दिया—'सुल्तान !'

वृद्ध ने उसी ढंग से कहा—'क्या तुम उस सर्प को प्यार कर सकते हो जो तुम्हारे गले में फंदा डाल कर तुम्हारे सिर को डसने का प्रयत्न करे ? तुम्हारे कंठ में हाथ डालकर चुंबन करनेवाली स्त्री यदि वास्तव में एक ज़हरीला साँप हो तो तुम उसे क्षमा कर सकते हो ? शाहज़ादा तुम्हारी करुणा और निर्बलता को प्रबल विजयी प्रेम कह सकता है, लेकिन बल्बन इतना मूर्ख नहीं कि साधारण झूठों में भुलाया जा सके। यही स्त्री जिसकी कि तुम प्राण भिक्षा माँग रहे हो, यही स्त्री जिसके अंगस्पर्श का सुख अभी तक तुम्हारे तन में ऊष्मा बन कर छाया हुआ है। यदि सफल हो जाती तो मेरे और तुम्हारे शव पर तुग़रिल खाँ की रखैल बन कर वैभव की चमक में नंगा नृत्य करती और विलास और मदिरा की झूम में न्याय का सिंहासन बंगाल की खाड़ी में डूब चुका होता।'

वृद्ध की बात प्रत्यक्ष थी। तुग़रिल सिर झुकाये खड़ा था। मागंधपाल ने स्वीकार किया—'आप ठीक कहते हैं सुल्तान।'

'तुमने उस पर,' सुल्तान ने फिर कहा—'विश्वास किया, पर वह सुल्ताना बनने के लालच में तुग़रिल के साथ व्यभिचार कर रही थी। तुम अपने हाथों से जिस पेड़ को सींच रहे थे, वह उसी पर कुठाराघात कर रही थी। क्या तुम फिर भी उसे क्षमा करने का अपराध करना चाहते हो ?'

'नहीं सुल्तान,' मागंधपाल ने सिर हिला कर कहा—आपने मेरी आँखें खोल दी हैं।'

'तुम स्वयं राजा हो मागंधपाल। तुग़रिल ने मेरे विरुद्ध विद्रोह किया है, वह मेरी प्रजा है, बिदुंमती ने तुम्हारे खिलाफ़ बग़ावत की है, वह तुम्हारी प्रजा है, मैं तुग़रिल को मृत्यु से कम कोई दंड नहीं दे सकता और बिदुंमती का दण्डविधान तुम्हारे ऊपर छोड़ना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। बोलो मागंधपाल। हैदर प्रतीक्षा कर रहा है। भोर होने से पहले ही मैं दोनों का न्याय कर देना चाहता हूँ।'

क्षर भर को मागंधपाल स्तंभित हो गया। उसने कहा—'मैं सुल्तान...'

'तुम ही मागंधपाल,' सुल्तान से स्वीकार किया, ..'तुमही।'

वुग़रा खाँ ने आगे बढ़ कर कहा—'बोलिये सामंत! आज आप राजा हैं, क्या अपने राजत्व को आप उस स्त्री के रक्त से प्रारंभ करना चाहते हैं जिसे आपने अग्नि की शपथ लेकर अपनी अर्द्धांगिनी बनाया था? जिसके सुख दुख में आपने निभा ले जाने का वचन दिया था? यदि आप विद्रोह करते और वह राजभक्ता होती तो वह संसार का सबसे बड़ा पाप पतिद्रोह होता? सुल्तान आपको आज्ञा दे रहे हैं, न्याय आप के शब्दों की प्रतीक्षा कर रहा है, बोलिये महाराज!!'

और मागंधपाल ने देखा कि बिंदुमती फफक फफक कर रो रही थी। उसने व्याकुल स्वर से कहा—'तुम रो रही हो बिंदु?'

'मुझे क्षमा करो स्वामी,' बिंदुमती सिसक उठी—'मुझसे भूल हुई। उफ़! यह मैंने क्या किया?'

'लेकिन तुम अपवित्र हो बिंदुमती', मागंधपाल का स्वर, विचलित स्वर उठ गया। 'अपने सतीत्व को तुमने सोने के लिये बेच दिया है।'

'मागंधपाल!' तुग़रिल ने गंभीर स्वर से कहा—'उसने भले ही अपना सतीत्व बेचा हो, तुम ऐसा कह सकते हो, किंतु तुमने सोने के लिये अपने आपको बेच दिया।'

'बोलो मागंधपाल', वृद्ध सुल्तान ने धीरज भरे स्वर से कहा—'न्याय तुम्हारी आज्ञा के लिये व्याकुल हो रहा है।' कहते कहते वह प्राचीर के पास जा कर खड़ा हो गया जैसे बाहर देख रहा था जहाँ उसके शत्रु शूली पर टँगे हुए थे।

मागंधपाल ने सिर उठाकर कहा—'उसे सूली पर चढ़वा दीजिये सुल्तान! मैं उसे यही दंड दे सकता हूँ।'

बुग़रा ख़ाँ चिल्ला उठा—'महाराज!'

कमला काँप उठी। तुग़रिल की आँखों में चिनगारी सी चमक उठी। सैनिक पीछे हट गये। स्वयं कठोर हैदर तक सिहर उठा किंतु सुल्तान पाषाण की भाँति खड़ा रहा।

'नहीं, नहीं, शाहज़ादा,' मागंधपाल ने हाथ उठाकर कहा—'मैं उससे डरता हूँ। यह स्त्री तुग़रिल से भी अधिक भयानक है। इसे मृत्यु से कम कोई दंड नहीं मिलना चाहिये।'

बिंदुमती ज़ोर से रो उठी। उस समय सुल्तान ने गंभीर गिरा से कहा—'शाहज़ादा सोच रहा है तुम हार गये हो मागंध। लेकिन वास्तव में तुमने अपने झूठे मोह को ठोकर मार कर चकनाचूर कर के न्याय के साथ न्याय किया है। मैं तुम्हारी

प्रशंसा करता हूँ मागंध। प्रेम एक भूल है जिसके लिये सबको प्रायश्चित करना होगा। हैदर !!'

'सुल्तान ?'

'इन्हें ले जाओ !' वृद्ध ने ऐसे कहा जैसे अत्यंत साधारण बात थी।

'ले चलो इन्हें।' हैदर ने बंदियों की ओर इंगित किया और सैनिक बंदियों को घेर कर हैदर के पीछे पीछे चले गये। मागंध-पाल व्याकुल सा देखता रहा। वृद्ध सुल्तान ने मुड़ कर कहा—'व्याकुल न हो मागंध। दूसरों के अधिकार छीनना पाप है, किंतु अपनों की रक्षा करना कोई पाप नहीं।'

'सुल्तान...,' जैसे मागंध का सोता फूट निकलेगा। और वृद्ध ने कहा—'तुम जाकर विश्राम करो मागंध।'

मागंधपाल सिर झुकाये चला गया।

'देखा शाहजादे !' बल्बन ने अपने हाथ बाँध कर कहा—'तुम जिसे प्रेम कहते हो वह एक भूल है, एक तृष्णा है।'

'आप भूलते हैं सुल्तान,' बुग़रा खाँ ने निर्भीक उत्तर दिया—'प्रेम इन छोटे छोटे बंधनों में सीमित नहीं रहता। वह इन क्षुद्र-ताओं से कहीं अधिक ऊपर है।'

'बुग़रा खाँ को अपने पिता की भूलों को सुधारने का अधिकार न प्रेम ने दिया है, न राज्य ने ही।' और सुल्तान ने रुक कर कहा—'कमला !'

'सुल्तान !' कमला ने काँपते हुए उत्तर दिया।

'जाओ अपने पिता की सेवा करो। जिस समय तुम्हारा बाप मर रहा है बिस्तर पर तड़प रहा है उस समय तुम एक प्रेमी से

आलिंगन कर रही हो ? तुम्हें शर्म नहीं आती ? जाओ ! बल्बन तुम्हारे अपराधों को क्षमा करता है। आइंदा तुम कभी भी इस बेवकूफ़ से मिल कर अपने आपको बरबाद नहीं करोगी। जाओ।'

कमला के पाँव उठते हुए देख कर बुग़रा खाँ ने करुण स्वर से कहा—'तुम जा रही हो कमल ?'

वृद्ध ने उसकी बात पर कोई ध्यान न देकर, कड़क कर कहा—'मैं कहता हूँ लड़की तुरंत चली जा। कुमारपाल का मान मेरा मान है, वर्ना देख, बाहर देख......'

कमल ने बाहर देखा। सूली पर टाँगी लाशों को देख कर उसने भय से चिल्ला कर आँखें बंद कर लीं। सुल्तान ने कठोर होकर कहा—'जा और इस प्रेम को एकदम इसी क्षण भूल जा। सुल्तान का बेटा जिस दिन स्त्री से छिप कर मिलेगा, उस दिन से तलवार सदा के लिये छूट जायेगी। जा !'

कमला चुपचाप चली गई। और सुल्तान ने मुड़ कर कहा—'मेरे अज़ीज़ ! देख लिया स्त्री का प्रेम ?'

बुग़रा खाँ ने सिक्त स्वर से फुत्कार किया—'वह बालिका है।'

'और तुम', सुल्तान ने व्यंग से कहा—'एक नासमझ बालिका को फुसलाने में अपना समय नष्ट कर रहे हो ? सल्तनत तुम जैसों की शक्ति पर निर्भर है, बल्बन के पुत्र आज कायर हो रहे हैं ?'

'नहीं, नहीं,' बुग़रा खाँ पुकार उठा—'मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। नहीं चाहिये मुझे तख्त, नहीं चाहता मैं यह हृदयहीन ताज, जहाँ न्याय के आडंबर में मनुष्य प्रेम नहीं कर सकता, केवल भय करता है......'

'बुग़रा खाँ,' वृद्ध ने मनुहार की—'तू मेरा पुत्र है। बल्बन कभी दिल का गुलाम नहीं था, तभी वह सुल्तान हो गया। लेकिन तू सुल्तान का बेटा होकर भी सिर्फ़ एक गुलाम है कायर ?'

'मैं, मैं नहीं जानता मैं क्या हूँ। मुझे छोड़ दीजिये, मैं सब कुछ छोड़ कर चला जाऊँगा।'

वृद्ध ने सुना। उसने कहा—'फ़ीरोज़ !'

अंगरक्षक आगे बढ़ आया। वृद्ध ने फिर कहा—'मैं बहुत थक गया हूँ फ़ीरोज़ ! ऐसा लगता है जैसे बहुत दूर से चलते चलते मैं जर्जर हो गया हूँ।'

बुग़रा खाँ ने कहा—'सुल्तान को याद रखना चाहिये कि मैंने बग़ावत की है। मुझे भी प्राणदंड मिलना चाहिये।'

'बुग़रा खाँ !' सुल्तान का स्वर खिंच गया—'तू मेरा पुत्र है !'

'पुत्र', बुग़रा खाँ हँसा। उसने कहा—बस ? सारा न्याय समाप्त हो गया ?

बल्बन ने सिर झुका लिया। उसने धीरे से कहा—'उफ़ ! फ़ीरोज़ ! मुझे यहाँ से ले चलो। बल्बन हवा से नहीं लड़ सकता। बुग़रा खाँ ! मैं जानता हूँ कि तुम अपनी हार को भूल से अपनी जीत समझ कर हँस रहे हो, लेकिन मैं तुम्हारी पराजय से ही हार गया हूँ......'

बुग़रा खाँ व्याकुल सा सुल्तान के पैर पकड़ कर चिल्ला उठा—'सुल्तान !'

उसे लगा पत्थर चटक कर पानी ऊपर निकलने वाला था। वृद्ध ने काँपते हाथ को उसके सिर पर फेरते हुए कहा—'पुत्र !'

स्नेह से सिक्त स्वर से ही उसने फिर कहा—'तूने पिता बल्बन से बग़ावत की है मेरे लाल! काश एक बार सुल्तान बल्बन से भी करता तो देखता कि बल्बन आज तक कभी नहीं हारा......'

पत्थर काँप कर और गहरा उतर गया था, कठोर, नितांत कठोर......बल्कि चट्टान हो गया था। बुग़रा ख़ाँ आर्त्त स्वर से कराह उठा। ग़ुलाम वास्तव में सुल्तान हो गया था।

समुद्र के फेन

साँझ की सुहावनी बेला में आकाश स्वर्ण की भाँति दमक रहा था। वायु अट्टहास करती हुई हाथ फैलाये हुये समुद्र की तरंगों पर दौड़ रही थी। जल हरहराता हुआ तीर पर वेग से चढ़ जाता। फेनों से बालू ढँक जाती। अनेक युवक युवतियाँ फेन से खेलतीं उन्माद से ठहाके मार कर हँस उठतीं। लहरें झेंपती हुई पीछे लौट जातीं। आकाश की छबि छाया लहरों पर मुसकरा उठती, और वायु के थपेड़ों से जल क्रुद्ध हो फुफकार उठता।

तंगवल्ली तट पर अकेली ही बैठी उँगली से बालू पर चित्र बना बिगाड़ रही थी। 'एक्वेरियम' (चलचरी) का। भीड़ का हलका शोर गूँजता हुआ धीरे धीरे उसके कानों में टकरा रहा था। उधर रेस्तराँ में लोग बैठे हुये 'मसाल दोषै' और काफ़ी खा पी रहे थे। उनके लिये जैसे जीवन एक मौज मात्र था। पर तंगम् को उन्हें उस तरह खाते पीते देख कर उनसे घृणा हो रही थी। उसके हृदय में एक क्षोभ सा भर रहा था। सहसा वह उनके अज्ञान पर धीरे से मुसकरा उठी। उसके गालों में गढ़े पड़ गये,

जैसे लहरें चक्कर मार कर ही स्थान पर दबती चली जाती हैं। जैसे जल के सारे वेग, समस्त गति का सौंदर्य एक ही केन्द्र पर रहस्य बन कर काँप उठता है।

तंगम् आज बहुत दिनों के बाद इधर आई है। उसने इसी वर्ष बी० ए० किया है। अपने गेहुँवे रंग के शरीर पर जब वह छपी हुई धानी साड़ी उत्तरी ढंग से बाँध कर आईने के सामने जाती है, तो उस समय वह अपने आप को ही शीशे में देख कर मुग्ध हो जाती है। उसे अपने रूप पर गर्व हो जाता है।

उसकी बूआ ने उसे अतीव लाड़ से पाला और पोषित किया है। बूआ की एक छोटी सी ज़मींदारी है। एक काश्तकार को ही उन्होंने उसका मैनेजर बना दिया है। वही वक्त पर रुपये ला कर दे जाता है। उसी से सब कुछ होता है, निर्विघ्न निर्विवाद।

तंगवल्ली देर तक वहीं बैठी रही। उसने देखा, उसके साथ हँसने बोलने वाला कोई नहीं था। बूआ नहीं रहेंगी, तो संसार में वह नितान्त निरावलम्ब हो जायगी।

तट पर अनेक युवक युवतियाँ बालू पर दो दो करके बैठे बातें कर रहे थे। तंगवल्ली ने उन्हें देखा, और उपेक्षा से मुँह फेर लिया। ये लोग और कुछ नहीं जानते, न जानना चाहते हैं, बस प्रेम की छलना में डूबे रहते हैं!

जब अँधेरा घिरने लगा, तो तंगवल्ली उठी, और सामने के कालेज के बाँई तरफ चल पड़ी। सड़क पर अनगिनती मोटरें खड़ी थीं—काली, नीली, लाल...

लेकिन उसने उधर ध्यान नहीं दिया। वह रुक गई, और ट्राम की प्रतीक्षा करने लगी।

बूआ का नाम था सुब्बलक्ष्मी। अधेड़ आयु थी। गालों पर झुर्रियाँ पड़ चुकी थीं। दो दाँत टूट चुके थे। पर नयनों में एक ऐसे स्नेह की अभिव्यक्ति थी कि देख कर सहज ही माता की ममता की अनुभूति होने लगती थी।

तंगम् भीतर घुसी। देखा, बूआ छत से लटके झूले की ओर सतृष्ण नयनों से देख रही थीं। तंगम् पास जा कर बैठ गई। बूआ चौंक उठीं, देखकर मुसकराईं, और न जाने क्यों उनकी आँखों में अपने आप पानी छलक आया।

तंगम् ने कहा—'अत्तै! क्या हुआ?'

बूआ ने कुछ देर तक कुछ भी न कहा, चुपचाप उसकी ओर देखती रहीं। तंगम् उस दृष्टि का अर्थ कुछ कुछ समझती थी। जब किसी युवती कन्या की ओर घर की बड़ी-बूढ़ी स्नेह से आँख भर कर देखती हैं, तो उसका अर्थ होता है, 'तेरा विवाह होना चाहिये!'

तंगम् लजा गई, पर उसने अनजान बन कर अपनी लाज को छिपा लिया।

बूआ ने कहा—'बेटी तुझे मैंने अपनी बेटी करके पाला है। है न सच? तू भी मुझे माँ की तरह प्यार करती है न?'

तंगम् ने सिर हिला कर स्वीकार किया। एक कोने में कुत्तीवलक्क (एक प्रकार के दीपक) जल रहे थे, जिनके प्रकाश में चमकते हुए फर्श पर पुरा हुआ कोलम (चौक) झिलमिला रहा था। अलगनी पर बूआ की सफेद साड़ी टँगी हुई थी। इस घर में अठारह हाथ की 'मड़शार' (रंगीन) साड़ियाँ केवल दो हैं। एक एक सौ पाँच रुपये की है। उस पर मूल्यवान ज़री का काम हुआ

है। दूसरी तीस पैंतीस रुपये की है। तंगम् अंग्रेजी पढ़ी युवती है। वह इतनी लम्बी साड़ी का बोझ क्यों लादे फिरे ?

बूआ के माथे पर विभूति लगी हुई थी। उसके ऊपर कैंची से कटे सफेद, काले छोटे छोटे बाल थे, जिनको देख कोई भी स्त्री काँप उठ सकती है, क्योंकि विधवा होना एक भयानक बात है।

बूआ ने गद्गद् हो कर कहा—'बेटी, अब तू बी० ए० भी हो गयी। आज तक मैंने कभी तेरी मर्ज़ी के खिलाफ कोई काम नहीं किया। क्या अब भी तू मेरी बात नहीं मानेगी ?'

तंगम् समझ गई। उसने मुँह फेर लिया। इससे उसकी स्वीकृति थी, जिसकी पृष्ठभूमि में नारी की युगान्तर की घर बसा कर रहने की प्रवृत्ति थी।

बाहर किसी के खाँसने की आवाज़ सुनाई दी। अधेड़ आयु के, आबनूसी रंग के अलगप्पा ने भीतर प्रवेश किया। वह एक धोती पहने था, जिसके आगे के भाग में किसी समय अच्छी ज़री का काम होने का अनुमान-मात्र ही अब आभासित हो सकता था। शरीर पर एक कमीज़ थी, और अधिकांश मद्रासियों की भाँति वह नंगे पैर ही था। सिर के पीछे मोटा चुट्टा था, और आगे से कुछ गंज आ जाने के कारण चौड़ी चौड़ी विभूतियाँ लगी थीं, जिनको देख कर लगता था, जैसे गहरे आकाश में धुँधली स्वर्ग-गंगा प्रवाहित हो रही हो। उसके हाथों पर अत्यधिक बाल थे। नाटा होने के साथ ही वह स्थूल शरीर का था। उसकी आवाज़ मोटी थी, और वह बहुत जल्दी जल्दी बोलता था। वही बूआ का काश्तकार और मैनेजर था।

बूआ ने प्रणाम-नमस्कार के बाद बैठने का इशारा किया। वह ऐसे बैठा, जैसे कोई भरा हुआ बोरा किसी ने लद से पटक दिया हो।

अलगप्पा बहुत बातूनी था। तंगम् को उसकी सूरत देखते ही कुछ बुरा-सा लगता था। वह उसे घोर मतलबी समझती थी। ये लोग कभी किसी के नहीं होते। अलगप्पा खेतों में काम करने वाले चमारों को अक्सर पिटवा देता था। तंगम् को उसकी यह आदत बिलकुल पसन्द नहीं थी।

अलगप्पा की पत्नी का नाम आन्डालम्मा था। वह एक नम्बर की लड़ाकू औरत थी। घर बरबाद करने की ही दीक्षा ले कर उसने ससुराल में पाँव रक्खा था। जो ज़ोर-ज़बर कर के अलगप्पा घर में लाता था, उसे रईसी में आन्डालम्मा बरबाद कर देती थी। पर उसकी पुत्री भामा अतीव सुन्दरी थी।

बूआ ने कहा—'कहो, भैया, घर में तो सब ठीक ठाक है?'

अलगप्पा ने बात समाप्त होने के पहले ही कहना प्रारम्भ कर दिया—'तुम मेरी अत्तै नहीं हो, मालकिन, मेरी माँ के समान हो। तंगम् के फूफा मुझे बेटे कर के मानते थे। अपनी औरत और पुत्र से भी कोई उतना स्नेह नहीं कर सकता। वह तो देवता थे, देवता!'

चोट ठीक पड़ी। बूआ की स्मृतियाँ उभर आईं। उनकी आँखों में पानी आ गया। अलगप्पा कहता गया—'घर तो नहीं बनेगा, माँ! वह जो डायन बैठी है, डायन!'

बूआ मुसकरा दीं। तंगम् हँस पड़ी।

'सच कहता हूँ' उसने फिर कहा—'जो जैसे आता है, वैसे

ही चला जाता है। अब भामा बड़ी हो गई है। वर की तलाश में हूँ। कोई कुछ माँगता है, कोई कुछ। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ, क्या न करूँ। पास में एक धेला भी नहीं है! और बहुत से तो कहते हैं—'लड़की कुछ पढ़ी नहीं है। कम से कम सेकेण्ड फार्म तक पढ़ी होती?'

अलगप्पा ने एक लम्बी साँस ली, और उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। कोई कुछ नहीं बोला। बूआ अपने ही विचारों में तल्लीन थीं। उन्होंने थोड़ी देर बाद गम्भीर स्वर में कहा—'अलगप्पा, तुम्हें तो सब मालूम है! नरसप्पा का पत्र आया है। रुपया माँगा है।'

तंगम् ने सुना। कुछ समझ में नहीं आया। उसने पूछा—'यह नरसप्पा कौन है?'

अलगप्पा ने कहा—'तुम नहीं जानतीं? अरे, वह तो कभी इस घर का ऋण नहीं चुका पायेगा! तेरी बूआ ने ही उसे इतना बड़ा किया है।'

बूआ ने गर्व से तंगम् की ओर देखा, फिर कहा—'कुछ भी हो, अलगप्पा, पचास रुपये तो उसे भेज ही दो। वह भी तो अब अपना ही है।'

अलगप्पा ने पल भर अकचका कर आँखें उठाईं, जैसे वह कुछ विरोध करना चाहता था पर हठात् बूआ की ओर देख कर बोल उठा—'मालकिन, दिल तो आपने पाया है! एक अण्डाल है, जो घर की होकर घर को घर नहीं समझती, और एक आप हैं! सचमुच आप देवी हैं!'

और उसने उठ कर एक लम्बा साष्टांग दंडवत किया। तंगम् कुछ उपेक्षा और तिरस्कार से देखती रही।

तंगम् के हृदय में भी उस अज्ञात युवक नरसप्पा के प्रति एक कौतूहल जाग उठा। कौन है वह, जिसे बूआ इतना मानती हैं? कैसा होगा वह?

जैसा प्रकृति का नियम है, वैसा ही हुआ। युवती की दृष्टि में उठ कर सदा ही एक अनजान युवक का भी चित्र अत्यंत सुन्दर होकर उपस्थित हो जाता है।

दूसरे दिन जब वह समुद्र-तट पर गई तो उसके शून्य हृदय में जो एक चित्र था, किसी काल्पनिक सुन्दर युवक का, वह शीघ्र ही उसे भूल गई। उसकी उदास आँखें फिर बनती बिगड़ती लहरों का खेल देखने लगीं। फेन से तट भर जाता था। फेन बिखर जाता था। फिर लहरें आकर उस पर छा जाती थीं।

उसने कालेज-जीवन में भी कभी किसी लड़के से मित्रता नहीं की। उसे अपने चरित्र पर गर्व था। उसकी शून्यता भीतर ही भीतर उसको जब कचोटने लगती थी, तो वह दुख के भार से व्यथित होकर उपनिषद् पढ़ने लगती थी। पर कुछ देर बाद ही कीट्स की 'एन्डिमियन' की कड़ियाँ उसके कानों में गूँज उठतीं। चंद्रदेवी का उस गड़रिये के प्रति प्रेम उसकी निभृत वेदना पर लहरों के जाल की तरह छा जाता। वासना के उबलते फेन बनने बिगड़ने लगते।

द्वन्द्व के इस विषाद की छलना हमारे समाज का बंधन है, व्यक्ति का दासत्व है।

कभी कभी वह सोचती, 'आज के साम्यवादी कहते हैं कि यह

समाज आर्थिक बन्धनों पर टिका है। शोषण इसकी शक्ति है, और बलात्कार इसका धर्म।' फिर ये विचार चले जाते। उसका अपनापन सत्य के भार को न सह सकने के कारण पंगु सा हो, लड़खड़ा कर दयनीय हो उठता। मद्रास नगर का वह वैभव उसे ज्वाला के समान झुलसता हुआ लगता। वह चाहती थी ममता, स्नेह, प्यार।

घर आकर देखा, बूआ भामा को पास बैठा कर बातें कर रही थीं। भामा ने तंगम् को देखा और धीरे से मुसकरा दी। तंगम् भीतर से 'आनन्द विकटन' (तामिल की एक पत्रिका) ले आई, और पास ही बैठ कर तस्वीरें देखती हुई बातें करने लगी।

भामा ने कहा—'अत्ते! तंगम् का ब्याह कब करोगी?'

तंगम् हँस दी। उसने सिर उठा कर कहा—'ओहो! तुझे मेरी बड़ी चिन्ता हो गई! कभी अपने बारे में भी सोचा? तेरे पिता तो तेरे पीछे पागल हुए जा रहे हैं!'

तंगम् के स्वर में व्यंग था, भामा को लगा। जैसे वह उसकी दरिद्रता पर हमला कर रही है। उसके हृदय में क्रोध आया जो विक्षोभ बन कर आँखों में मौन हो गया। तंगम् ने जो कहा है, इसीलिये न कि वह जमींदार है, घर की उससे कहीं अच्छी है, उसका बाप उसीके यहाँ नौकर है, और खुद पढ़ी लिखी है।

उसने कहा—'हमारा क्या? हम तो गरीब लोग हैं। ब्याह नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे पास लक्ष्मी नहीं है। किन्तु तुम

तो ऐसी नहीं हो। लोग कहते हैं, जब लक्ष्मी के रहते सरस्वती भी आ जाती हैं, तो वह स्थान ठीक नहीं रहता।'

'क्या मतलब ?' तंगम् ने भौंहें सिकोड़ कर पूछा। उसका नीचे का होठ कुछ निकल आया।

भामा ने कहा—'यही कहती हूँ कि हमारे यहाँ बड़ी उम्र तक ब्याह नहीं होते, तो लड़कियों के लोग नाम धरते हैं। तुम भी तो स्त्री ही हो। क्यों, अत्तै,' उसने मुड़ कर कहा—'लोग क्या क्या नहीं कहते ? मेरी तो बात ही और है। क्या तंगम् की कहीं बातचीत भी नहीं चली ?'

तंगम् ने कुछ नहीं कहा। बूआ बोल उठीं—'हाँ, हाँ, चली क्यों नहीं ? नहीं चली, तो अब चलेगी। चलाये से चलेगी कि अपने आप ? तंगम् का ब्याह होगा, तेरा भी होगा। तू क्या हम से कुछ अलग है ?'

भामा ने लज्जा से सिर झुका लिया। पुरुष के प्रति उसका इतना स्नेह देख कर तंगम् को अच्छा नहीं लगा। वह उठ गई।

सन्ध्या जब समुद्र के ऊपर से अपना रंगीन आँचल हटा कर स्नान के लिये वस्त्र उतारने लगी, तो तंगम् उठ खड़ी हुई। जाकर वहीं समुंद्र-तीर पर बैठ गई। सैकड़ों व्यक्ति वहाँ थे, पर तंगम् को जैसे उन सबसे कोई सम्बन्ध नहीं था। आज तक उसके पीछे किसी कालेज के लड़के ने चक्कर नहीं लगाये। वह सुन्दर थी अवश्य, किन्तु उसमें आकर्षण नहीं था। तंगम् सदा ही इसे समझती रही है।

धीरे धीरे सूर्य्य समुद्र की उत्तंग लहरों को पकड़ने का अंतिम

प्रयास करके विफल-सा खिसक कर अन्धकार में डूब गया। लहरें अधिक नील हो गईं। आकाश में तारे चमक उठे, जैसे मुँह खुलने पर उज्ज्वल दाँत चमक उठते हैं। उस बढ़ती हुई नीरवता में समुद्र की एकांत हहर उसके अंतराल में एक महान संतोष बन कर व्याप्त होने लगी। वह विमुग्ध सी बैठी रही देर तक।

घर आने पर तंगम् ने देखा, दीपक जल रहे थे। काश, यहाँ बिजली होती! शहर में रह कर घर में बिजली का न रहना उसे बड़ा बुरा लगा। अब वह अवश्य बिजली लगायेगी। बी० ए० तक बूआ की ममता ने उसे पढ़ाया था, उनके विचारों ने नहीं। तंगम् के स्नेह ने समाज के सारे प्रतिरोधों के बावजूद बूआ को उसे पढ़ाने के लिये विवश किया था।

भीतर झाँक कर देखा, बूआ चुपचाप सो रही थीं। उसे विस्मय हुआ। अभी तो रात प्रारंभ ही हुई है। चुपचाप भीतर जा वह कपड़े बदलने लगी। रसोईं में जाकर देखा, केवल पौंगल (खिचड़ी) बनी रखी थी। वह खाने लगो।

बूआ का लेटा रहना अकारण नहीं था। उन्हें रोज शाम को धीमा धीमा ज्वर आ जाता था। आज वह तीव्र हो गया था। उनके शरीर में पीड़ा भी हो रही थी। वह बिस्तर पर पड़ी थीं। उनके नयन अधमुँदे से, थके-माँदे से कभी कभी खुल जाते थे। उन्होंने तंगम् की ओर देख कर कहा—'तंगम् बेटी!'

तंगम् ने पास आकर कहा—'सो रहो, अत्तै! तुम न जाने क्या क्या सोचा करती हो?'

बूआ ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर आँखें मींच लीं। उनके

होंठ खदकते पानी की तरह, काँप उठे, जैसे भीतर ममता का ताप बहुत बढ़ गया हो।

तंगम् ने उठ कर देखा, घड़ी में एक बज रहा था। उसने अपने सिर को जैसे अनजान में ही हिलाया। उसी समय बूआ कराह उठीं।

बूआ के पास जा कर वह खड़ी हो गई, कहा—'अत्तौ, वैद्य की दवाई खाते-खाते आज एक महीना हो गया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। कहो तो किसी डाक्टर को बुला लाऊँ।'

बूआ के फैले होंठ सिकुड़ गये। आँखें खोल कर उन्होंने एक-बार स्थिर दृष्टि से तंगम् की ओर देखा। कहा—'बेटी, तू अँग्रेजी पढ़ी-लिखी है। मैं तो वही पुरानी गँवारिन हूँ। जन्म से आज तक तो कभी अँग्रेजी दवा खाई नहीं। अब खाकर भी क्या करूँगी? बच कर भी क्या करूँगी? एक तेरा ब्याह करना था। उसी के लिये जीवित रहने की इच्छा थी। अन्यथा इस अभागिन विधवा से संसार को लाभ ही क्या है?'

तंगम् झुँझला उठी यह सोच कर कि उसके विवाह की समस्या न होती तो बूआ को जीवित रहने की वास्तव में कोई आवश्यकता न थी। फिर जैसे बूआ की अपने प्रति अगाध ममता से भर कर उसने कहा—'तुम बहुत अच्छी हो, अत्तौ!'

अलगप्पा ने घर में प्रवेश करते हुए कहा—'अच्छी नहीं, देव कहो, बेटी, देवी!' और पास आ कर बैठते हुए कहने लगा—'अब कैसी तबीयत है? क्यों, बेटी तंगम्, अब तो मालकिन कुछ अच्छी हैं न?'

तंगम् ने निराशा से सिर हिला दिया। अलगप्पा की आँखों

के सामने जैसे एक काली छाया घूम गई। वह सोचने लगा, 'बुढ़िया मर गयी, तो ? तंगम् अपना विवाह कर लेगी। फिर जिमींदारी का क्या होगा ?' यह सोच कर उसके दिल में एक डर समा गया। सिर हिला कर उसने कहा—'तो भी कोई चिन्ता नहीं ! भगवान सब अच्छा करेंगे ! घबराहट से काम नहीं चलेगा। दवा तो वैद्य की ही हो रही है न ?'

तंगम् ने कहा—'हाँ, उससे कोई लाभ नहीं हो रहा है। मैं कहती हूँ, डाक्टर को बुला लें। पर अत्तै डाँट देती हैं कि तू लड़की है, कुछ नहीं समझती !'

'सो तो है ही !' अलगप्पा ने कहा। तंगम् एकदम चौंक पड़ी। अलगप्पा अपने फटे स्वर से कहता ही गया—'तुम क्या जानोगी, बेटी ! रुपया क्या आसानी से आता है ? आगा पीछा सोच कर खर्च करना चाहिये। डाक्टर का क्या है ? वह सिल मिलते ही उस्तरा तेज करने बैठ जायगा !'

तंगम् अवाक रह गई। बूआ ने करवट बदल कर कहा—'अलगप्पा, अभी तंगम् का ब्याह करना है। और कहीं मैं चल बसी, तो क्रिया-कर्म के लिये रुपया चाहिये। घर में डाक्टर आने जाने लगे, तो क्या बच पायेगा उनसे ?'

अलगप्पा ने हाँ में हाँ मिला कर कहा—'बेटी तो अभी छोटी ही है, अत्तै ! बी० ए० पास कर के ही क्या दुनियादारी हासिल हो जाती है ? क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। ऐसे समय भी यदि मालिक के कुछ काम न आया, तो नरक का ही अधिकारी हूँ मैं ! और मालिक भी साधारण मालिक नहीं ! सचमुच यह पापी अलगप्पा तो नरक ही जायगा। इसके लिये

और कहीं कोई ठौर नहीं है। मन में बस मालकिन की ही लौ लगी रहती है। लेकिन वह जो घर में डायन है न! बस, जीवन है या......'

बूआ ने बीच ही में टोक कर कहा—'ऐसा क्यों कहते हो, भैया? अपना अपना स्वभाव और अपना अपना भाग्य है। जो दूसरों को दुख देता है, वह स्वयं भी कभी आराम से नहीं रहता।'

अलगप्पा चला गया। तंगम् दीपक जला कर लक्ष्मी के सम्मुख बैठ, जोर जोर से पाठ करने लगी। बूआ पड़ी पड़ी सुन रही थीं। तंगम् को इन बातों में तनिक भी विश्वास न था; पर आजकल उसके हृदय में एक भय की छाया समा गई थी, जिससे उसकी भावनायें निःशक्त हो उठी थीं।

दीपक के धुँधले प्रकाश में उसने देखा, बूआ के मुँह पर सूजन आ गई थी। वह जानती थी कि स्त्री के मुख पर बीमारी में सूजन आना कितनी भयानक बात है। वह काँप उठी। फिर एक बार हृदय की समस्त शक्ति से शिव की प्रार्थना की।

उस सन्नाटे में तंगम् का मन डाँवाडोल हो रहा था। अपने आगे उसे अन्धकार के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता था। बूआ के बाद जो सम्बन्धी आज तक उनके डर से चुप रहे हैं, उनकी जबान पर से ताला हट जायगा। अब भी तो समाज में स्त्रियाँ उसकी ओर घूर कर देखती हैं। उनकी दृष्टि एक विद्वेष की भावना रहती है। पुरुष उसकी ओर घृणा की दृष्टि में से देखते हैं, जैसे लड़कियों का कालेज में पढ़ना कोई पाप है। तो क्या वह विवाह करेगी? किन्तु जाति वाले तो मुश्किल से उससे अपना

हिल उठीं। फिर उन्होंने तंगम् की ओर देख कर कहा—'बेटी, एक काम करेगी?'

तंगम् ने कहा—'क्या, अत्तौ?'

बूआ ने कहा—'बेटी, मेरा अब कोई ठीक नहीं है। एक महीना भी जीवित रह सकती हूँ, एक घण्टा भी। और क्या जाने अभी...' वह थक कर हाँफ गईं, और फिर धीरे धीरे बोलीं—'बेटी, एक पत्र लिख दे। मैं बोलती हूँ।'

तंगम् ने कहा—'कल लिखा लेना, अत्तौ! ऐसा क्या जरूरी है?'

बूआ ने सिर हिला कर कहा—'तू नहीं जानती, बेटी। तू अभी बच्ची है। चल उठ!'

तंगम् ने कोई विरोध नहीं किया। कलम, दवात लेकर बैठ गई। सोचने विचारने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। कहा—'अत्तौ, तुम बोलती जाओ, मैं वैसे ही लिखती चलूँगी। हाँ, लिखवाओगी किसे?'

बूआ ने कहा—'और कौन है, बेटी? वही नरसप्पा है। अब मैं सचमुच नहीं बचूँगी। तू अकेली सब कैसे सँभालेगी? नरसप्पा अनाथ बच्चा था। मैंने ही उसे पाला है। उसे रुपयां भेजती रही हूँ। वह क्या अब भी आ कर घर नहीं सँभालेगा?'

तंगम् ने कुछ नहीं कहा।

बूआ लिखाने लगीं—

बेटा नरसम्—बहुत दिन से तू मेरे पास नहीं आया। आज इस दुख की घड़ी में और हमारा कौन है? तंगम् तो लड़की है।

वह क्या-क्या करेगी ? जमींदारी है, उसको भी तो सँभालना है। तू आ ! सब कुछ तेरा ही है। मेरा क्या ? मैं तो मरण-शैय्या पर पड़ी हूँ। तभी तंगम् से यह लिखवा रही हूँ। तंगम् का ब्याह कराना है। मेरे बाद तू ही उसकी देख रेख करेगा। तुझे मैंने अपना बेटा करके माना है। यदि तू भी नहीं आयेगा, तो और कौन हमारा है ? मैं तो अब बहुत दिन तक नहीं जिऊँगी...'

तंगम् लिखती रही। बूआ ने अन्त में कहा—'बेटी, इसे कल ही डाक में डलवा देना। अब मैं सुख से मरूँगी।' कह कर उन्होंने आँखें मीच लीं, जैसे बहुत थक गई हों।

दीपक की ज्योति धुँधली पड़ चली। तंगम् ऊँघ गई।

प्रातःकाल जब तंगम् की आँख खुली, तो पत्र उसने उसी समय उठकर बाहर सड़क के लेटर-बक्स में डाल दिया।

दिन भर बूआ निश्चल पड़ी रहीं। बहुत ज़ोर दे कर तंगम् ने उन्हें चार-पाँच चम्मच कंजी पिलाई।

रात और भी भयानक हो कर आई। बूआ की साँस जैसे किसी आशा पर अटकी हुई थी। अकेली तंगम् चुपचाप भयाक्रान्त हो देखती रही। दूसरे दिन जब सूरज बीच आकाश में पहुँच गया, तो द्वार पर कोई पुकार उठा—'अत्तै !'

बूआ ने आँखें खोल दीं। नरसप्पा आ गया था। तंगम् उठ कर खड़ी हो गई। उसने देखा, आगन्तुक उससे आयु में कुछ अधिक था। गोरे रंग के साथ-साथ उसके मुख पर लावण्य भी था। वह बिलकुल साधारण कपड़े पहने था।

बूआ ने आँखें खोल दीं, और प्रसन्नता के मारे उनका गला अवरुद्ध हो गया।

तंगम् ने कहा—'अत्तै ! मामा (दक्षिण भारत में लड़कियाँ अजनबी युवक को मामा कह कर सम्बोधित करती हैं। वहाँ मामा अपनी भांजी से ब्याह भी कर सकता है) आ गये !'

युवक पास बैठ गया। फिर मुड़ कर तंगम् को देख कर बोला—'मालूम देता है, तुम कई रातों से जागी हो। जाओ, थोड़ा सो रहो । जरूरत होगी, तो बुला लूँगा।'

और कोई ऐसा कहता, तो तंगम् तुरन्त अस्वीकार कर देती। किन्तु नरसप्पा की बात वह न टाल सकी। कमरे में जा कर वह लेट गई और थोड़ी ही देर में सो गई।

रात के एक बजे के सन्नाटे में किसी ने उसे हिला कर जगा दिया। देखा, भामा पास में खड़ी है। घबरा कर तंगम् ने उससे पूछा—'क्या है ?'

भामा ने कहा—'सोने को बहुत समय मिल जायगा, तंगम्। उठो न !'

'बात क्या है ?' तंगम् ने चिन्तित हो कर कहा। फिर जा कर बूआ के कमरे में देखा, नरसप्पा, आन्डालम्मा और अलगप्पा निश्चेष्ट से बैठे थे। बूआ बिस्तर पर चेतनाहीन-सी हाथ-पाँव पटक रही थीं। दौड़ कर तंगम् ने बूआ के पैर पकड़ लिये।

क्षण भर बाद ही एक भयानक कुहराम मच गया। आन्डा-लम्मा ने रो-रो कर छाती पीटना प्रारम्भ कर दिया। नरसप्पा सिर पकड़ कर बैठा रहा। अलगप्पा दाह क्रिया का प्रबन्ध करने में जुट गया। भामा अपनी माँ के दुख से विचलित हो कर उसे सान्त्वना देने का प्रयत्न कर रही थी। तंगम् बूआ के पैरों पर सिर रखे रो रही थी। उसे कोई सान्त्वना देने वाला न था।

समुद्र के फेन

समुद्र में भयानक तूफ़ान उठा था। पोत डूब चुका था। भग्न खंडों का सहारा ले, अनेक यात्री अपने अपने प्राणों की चिन्ता कर उत्तुंग लहरों पर हाथ-पाँव मार रहे थे।

पर तंगम् ने हाथ-पाँव नहीं चलाये। उसे जैसे जीवन का कोई मोह नहीं था। उसने अपने को छोड़ दिया उन कठोर और निमर्म लहरों की दया पर, जिनके अघात से उसका पोत डूब चुका था, जिस पर उसके अमूल्य मणिमाणिक लदे हुए थे।

रात के सन्नाटे में रोने की वह दर्दनाक आवाज डरावनी बन पड़ोस में फैल गई।

क्रिया कर्म की विषाद-कालिमा जब होम-धूम्र के साथ घर से उड़ गई, तो तंगम् ने देखा कि अब वह पहले से भी अकेली थी। उसका अब वास्तव में कोई नहीं था। दिन हो या रात अब वह कभी बाहर न निकलती, चुपचाप कमरे में पड़ी रहती। उसका हृदय भीतर ही भीतर कचोटता रहता। आँखों के सामने एक शून्यता छायी रहती, जिसमें प्रकाश की एक भी रेखा दिखाई न पड़ती।

नरसप्पा से उसकी कभी कोई बातचीत नहीं हुई, फिर भी वह उसे पसन्द करने लगी थी। उसके हृदय के न जाने किस अनजान कोने में उसकी छाया, का भी अस्तित्व आ बैठा था, जिसे वह अकेले में स्वीकार करने को कभी भी तत्पर न होती। पहले ही दिन जो उसने उसे स्वाभाविक रूप से ही मामा कह दिया था, कभी कभी यही सोच उसे एक लाज सी हो आती।

अत्तै की स्मृति ने उसे भीतर ही भीतर खा लिया था। जब उसकी आँखों के सामने बूआ की मातृ ममता से भीगी आँखें

नाच उठतीं, तो वेदना से उसका हृदय अपने आप कराह उठता। उस सुनसान में घर की एक एक ईंट में अत्तौ की याद बन कर गूँज उठती।

बाहर कुछ खड़खड़ सुनाई दी। उठ कर देखा, नरसप्पा और भामा बातें कर रहे थे। न जाने क्यों उसे यह अच्छा नहीं लगा। उसने घूर कर देखा, और तुरन्त सँभल गई। भामा उसे देख कर जैसे कुछ सकपका गई, किन्तु नरसप्पा वैसे ही खड़ा रहा।

तंगम् ने कहा—'कहो, भामा, आज कैसे आई हो? इधर कई दिन से तो दर्शन ही नहीं दिये?'

भामा ने कहा—'क्या करूँ, मालकिन? माँ को तो आप जानती ही हैं। पिताजी आपके ही काम में फँसे रहते हैं। मुझे घर के कामों से ही फ़ुरसत नहीं मिलती।'

'मालकिन' शब्द तंगम् के दिमाग में एक अपमान का व्यंग्य बन कर बज उठा। उसने घूर कर उसकी ओर देखा, और अपने आप उसकी दृष्टि नरसप्पा की ओर चली गई।

भामा ने फिर कहा—'पिताजी ने भामा को बुलाने के लिये कहा था। इसी से आ गई थी।'

क्षण भर तंगम् ने नरसप्पा की ओर देखा, फिर मुसकरा कर भीतर लौट गई, जैसे उससे कोई मतलब ही नहीं।

शाम को नरसप्पा ने जा कर अलगप्पा का द्वार खटखटा दिया। भीतर से आ कर भामा ने द्वार खोला। पल भर के लिये

दोनों के नयन मिले। भामा ने मुसकरा कर कहा—'आइये! पिताजी भीतर हैं।'

नरसप्पा भीतर जा कर बैठ गया। अलगप्पा देखते ही चिल्ला पड़ा—'ओहो! बड़ी प्रतीक्षा कराई, भैया! अरी, भामा, काफ़ी तो ला!'

जब वे लोग काफ़ी पी चुके, तो भामा उन्हें छोड़ कर चली गई।

अलगप्पा ने उसकी ओर देखा। भविष्य की आशा उसकी आँखों में एक चमक बन कर खेल गई। उसने कहा—'तुम्हें यहाँ आने से तंगम्‌वल्ली ने रोका तो नहीं?'

नरसप्पा ने नादान बन कर पूछा—'क्यों? वह क्यों रोकती?'

अलगप्पा ने धीरे से कहा—'तुम नहीं जानते, नरसप्पा! वह लड़की अच्छी नहीं है। मैं तो कुछ भी नहीं समझ पाता कि अब वह क्या करेगी। बूआ की मौत का सोच तुमको नहीं हुआ कि मुझको नहीं हुआ? लेकिन वह तो ऐसी बनती है, जैसे उसके अतिरिक्त किसी को भी बूआ से कोई सहानुभूति नहीं थी। कैसे हो सकता है यह, भैया? तुम्हीं बताओ, अत्तै के चरणों पर कौन न्यौछावर नहीं है? बताओ, नरसप्पा! मैं उन्हीं के अन्न से पला हूँ। तुम भी तो उन्हीं के पाले हुए हो। फिर क्या तुम यह सह सकते हो कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी आत्मा का अपमान किया जाय?'

नरसप्पा सोचने लगा। किन्तु वह कुछ समझ नहीं सका। उसने कहा—'अपमान! कैसा अपमान? तंगम् का तो विवाह मुझे कराना ही है।'

'कराना' शब्द सुन कर अलगप्पा जैसे जीवित हो गया। उसने उसके हाथ पकड़ कर कहा—'तुम देवता हो, नरसप्पा, देवता! मुझे तो अपनी भामा की चिन्ता पड़ी है। मेरे भगवान्! ऐसा क्यों कर दिया तुमने? अब तो कुछ नहीं हो सकेगा? बेटी के व्याह के लिये रुपया देना तो दूर, तंगम् शायद अब मुझे भी न रखे!'

नरसप्पा ने चौंक कर पूछा—'क्यों? तुम्हें काम-काज के लिये नहीं रखेगी, तो कौन करेगा?'

अलगप्पा ने कानों पर हाथ रख कर कहा—'छिः छिः, भैया! वह बी० ए० पास है। अलगप्पा तो अँग्रेजी का एक फूटा अक्षर भी नहीं जानता। वह नये जमाने की लड़की है। उसे क्या हम लोग पसन्द आयेंगे? इसीलिये तो सोचता हूँ, भैया, कि शादी का रुपया तो दूर, हमें पेट के लाले पड़ने लगेंगे।'

नरसप्पा ने अलगप्पा को घूर कर देखा, और कहा—'यह नहीं हो सकता, यह कभी नहीं हो सकता! पढ़ लिख गई है, तो क्या हमारी ही छाती पर मूँग दलेगी?'

अलगप्पा ने हाथ हिलाये, मानो यह बात तो यों ही कट गई। फिर उसने कहा—'अब हम किसके अपने हैं, भैया? अपना करके मानने वाली तो चली गई। अब वह बातें कहाँ रहीं?'

नरसप्पा बोला—'नहीं, अलगप्पा, मेरा कहना वह नहीं टालेगी। मैं तुम्हें रुपया दिलवा दूँगा।'

'दिलवा दूँगा,' कह कर अलगप्पा जोर से हँसा। उसके व्यंग्य को देख कर नरसप्पा का सोया हुआ अभिमान प्रतिशोध बन कर जाग उठा। उसने उसका हाथ पकड़ लिया। अलगप्पा कह रहा

था—'भैया ! तुम अभी जवान हो। तुमने दुनिया नहीं देखी। क्रिया-कर्म के अवसर पर तुमने नहीं देखा, तंगम् ने क्या उसी श्रद्धा से काम लिया, जो हमारी जाति की स्त्रियों में होती है ? हर बात में मुझसे सवाल-जवाब करती थी कि इतना खर्च क्यों हुआ ! तुम्हीं बताओ, क्या मैं चोर था ? भैया, स्त्रियों को अधिकार मिलना ही पाप का मूल है। मेरी स्त्री को ही देखो ! क्या छोड़ा है घर में ?

नरसप्पा ने हाथ छोड़ दिया, और कमरे में इधर उधर टहलने लगा। उसकी गति में एक प्रश्न था, उसके अंगचालन में एक आतुरता थी। उसने एक बार बढ़ कर अलगप्पा के कन्धों को पकड़ कर कहा—'तुम समझते हो कि वह मेरा कहना नहीं मानेगी ?

अलगप्पा जोर से हँस दिया। फिर उसने कहा—'जाने दो, नरसप्पा, जाने दो ! मैं तो तुमसे कह ही चुका हूँ। लेकिन यदि तुम्हें विश्वास न हो, तो जाओ, पूछ लो ! वह तुम्हें भी अपने घर से चले जाने को कहेगी !'

नरसप्पा पीछे हट गया, जैसे किसी ने कस कर एक चाँटा जड़ दिया हो। अपमान से उसका मुँह स्याह हो गया। वह चिल्ला उठा—'वह यह साहस नहीं कर सकती, अय्यर ! वह यह साहस नहीं कर सकती ! मुझे उसी की बूआ ने पाला है ! और अंतिम समय में अपना समझ कर बुलाया था। तुम समझते हो, तंगम् मुझे निकाल देगी ?'

'निस्संदेह ! मेरे साथ ही वह तुम्हें भी निकाल देगी !' अलगप्पा ने दृढ़ता से कहा—'यों न जाओगे, तो धक्के मार कर

निकाल देगी। निकाल देगी, क्योंकि उसकी जिम्मेंदारी है। वह अंग्रेजी पढ़ी लिखी है। उसको स्वतंत्र जीवन चाहिये। हमारे कायदे-कानून उसे पसन्द नहीं। हमारे रहते अन्याय चलेगा कैसे? इसी से वह हमें अलग कर देगी कि न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी!'

नरसप्पा उसकी बात सुन कर एकदम पागल सा घूम गया। मुट्ठी बाँध कर पल भर कुछ सोचता रहा। फिर एकाएक मुड़ कर बोला—'अय्यर, वह तुम्हें निकाल देगी, तो क्या तुम भूखे मर जाओगे?'

'और नहीं क्या करूँगा?' अलगप्पा ने रुआँसा हो कहा—'मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ। तुम्हारी तरह जवान होता तो कुछ कर भी लेता; किन्तु अब तो शक्ति ही नहीं रही। फिर तुम्हीं बताओ, क्या करूँगा?'

नरसप्पा ने उसका हाथ पकड़ कर निश्चय से कहा—'डरते हो, अय्यर? मेरे रहते डरते हो? मैं तुम्हारी पुत्री से विवाह करके तुम्हारे बोझे को हलका कर दूँगा, और फिर तुम स्वतंत्र हो जाओगे!'

अलगप्पा ने गद्गद् होकर नरसप्पा के पैर पकड़ लिये, और उन पर अपना सिर भी टेक दिया।

'हाँ हाँ! यह क्या करते हो, अय्यर?' कह कर नरसप्पा ने उसे बड़ी कठिनाई से उठाया। अलगप्पा कह रहा था—'परमात्मा के आँख नहीं है! अन्ते के स्थान पर तुम्हें न रख कर उस बदतमीज लड़की को रख कर उसने कितना बड़ा अन्याय किया है, यह तो हमारा ही हृदय जान सकता है।'

नरसप्पा सोच में पड़ गया।

कमरे का सन्नाटा अपने आप ही में घुट रहा था। तंगवल्ली उदास सी लेटी थी। उसके दिमाग में कितनी ही बातें सागर की लहरों की तरह उठ उठ कर किसी अनन्त तृष्णा से तट की ओर भाग रही थीं कुछ पकड़ लेने, किंतु लहरें क्या तट को आलिंगन में बाँध पाती हैं ?

तंगम् का मन उचाट हो गया। आज बूआ होतीं, तो क्या उसे अकेलापन इतना खलता ? नरसप्पा, जिससे उसका सब कुछ वह बाँध गयी हैं, उससे इतना उदासीन रहता ?

इसी समय उसे किसी की पगध्वनि सुनाई दी। थोड़ी देर बाद वह पदचाप रुक गई। तंगवल्ली उन्मादिनी सी प्रतीक्षा करती रही किंतु कोई भीतर नहीं आया। वह कुछ देर चुपचाप पड़ी रही, फिर उठी। बाहर झाँक कर देखा, नरसप्पा आकर चटाई पर पड़ा लेट गया था। उसका मुख दीवार की ओर था। न जाने क्यों, हृदय में अपने आप कुछ कचोट उठी।

लौटने को पाँव उठाया, किंतु हाथ की अभागिन चूड़ियाँ बज उठीं। नरसप्पा ने मुड़ कर देखा, और बोल उठा—'तंगम्।'

तंगम् को लगा, जैसे आज नरसप्पा की दृष्टि में वह हीन थी। मन ही मन एक विद्वेष की आग सी दौड़ गई। फिर भी ऊपर से एक मुसकराहट दौड़ गई, और गालों में गढ्ढे पड़ गये।

नरसप्पा ने कुहनियाँ टेक कर हथेलियों पर अपने मुँह को

टिका दिया, फिर कहा—'तंगवल्ली, मैं कल से सदा के लिये यहाँ चला जाऊँगा।'

कहना चाह कर भी तंगम् कुछ नहीं कह सकी। केवल निगाह भर कर देखती रही। सचमुच नरसप्पा सुन्दर था, ऐसा सुन्दर कि बिलकुल उत्तरी लगता था। बी० ए० पास करके जो स्त्री के हृदय में संकुचित गर्व होता है, वही तंगम् को भीतर ही भीतर-कुरेद उठा। इतने दिन से वह यहीं था, तंगम् ने कभी भी उसकी ओर नहीं देखा। आज जब वह जाने की कह रहा है, तब वह एकदम इतनी विह्वल क्यों हो गई ?

नरसप्पा सन्नाटे से ऊब गया। उसने समझा कि तंगम् को कोई आपत्ति नहीं है। उसने फिर कहा—'कोई काम हो, तो मुझे बता दो। तुम्हारी बूआ बहुत अच्छी थीं। वह स्त्री नहीं देवी थीं। उन्होंने जीवन भर अपने लिये कुछ भी नहीं किया। तुम्हारे ही लिये वह सदा विकल रहीं। तुम उन्हें भूल न जाना !'

नरसप्पा तंगम् के नयन देख कर सहम गया। वह निश्चय नहीं कर सका कि वह भाव स्नेह का सुख था या घृणा का आत्म-सन्तोष। किन्तु एकाएक वह हँस उठा। वह विजय की भावना की एक स्पष्ट गूँज थी।

तंगम् घृणा से अपने आप सिहर उठी। उसे याद आया, जब बूआ बीमार पड़ी थीं, उनका शरीर काला पड़ गया था, उस समय कोई आदमी ऐसा न था, जो वैद्य को बुला लाता। उस समय वह अकेली थी। रात की डरावनी अँधियारी में, जब बूआ का गला भर्रा उठता था, और वह भयानक रूप से कराहने लगती थीं, तब कहाँ था यह बूआ का सम्बन्धी, जो अब उसका

दूर का मामा बनने का अधिकार जता रहा है ? आत्म-सम्मान का आघात जब मर्म पर पड़ता है, तो स्त्री में युगों का सोया हुआ गुलाम जाग उठता है ।

उसने तीव्र स्वर में कहा—'बहुत कहा, मामा ! कह चुके तुम, सुन चुकी मैं ! किन्तु जिसने तुम्हें रिश्ता न होने पर भी खिला पिला कर बड़ा कर दिया, उसे तुमने बड़े होकर ही क्या दे दिया, जो मुझे ही सन्देह से देख रहे हो ?'

'इसी की तो हविस रह गई है दिल में, तंगम् ! इसी का तो पाश्चात्ताप बचा रह गया है, जो हृदय को भीतर ही भीतर डस रहा है ।'

तंगम् ने फिर प्रतिवाद किया—'गिरे दूध पर रोने से क्या होता है ? जब समय था, तब तो तुम आये नहीं । अब वह मर गईं, तो सब सगे बनने लगे हैं !'

'पढ़ा कर उन्होंने तुम्हारा दिमाग खराब कर दिया, तंगवल्ली ! किसने नहीं मना किया बूआ को कि मत पढ़ाओ, मत पढ़ाओ। मगर बेटी को बिना बी० ए० पास कराये उन्हें सब्र कहाँ था ? तुम्हें क्या अब किसी की बात सुहायेगी ? अपना अपना भाग्य है। आन्डालम्मा के घर में क्या न था ? मगर आज कुछ है ?'

तंगम् तड़प उठी। आन्डालम्मा से उसकी तुलना ! वह क्रोध से चिल्ला उठी—'बूआ का नमक खाकर ऐसी बातें कहते तुम्हें शर्म नहीं आती ?'

'ओहो !' कह कर नरसप्पा तनिक जोर से और किंचित् व्यंग्य से हँस उठा, 'बड़ा दर्द हो रहा है अब ? ऐसा ही था, तो

बूआ के साथ ही क्यों नहीं चली गईं ? अब जो छाती फट रही है, मैं क्या उसका मतलब नहीं जानता ? इस जिम्मेदारी के पीछे जो ऐंठ है, वह व्यर्थ है, तंगवल्ली। तुम कानून नहीं जानती शायद ? कुटुम्ब में पुरुष के होते स्त्री को कुछ नहीं मिलता। जानती हो ? बी० ए० पास करने से ही सब कुछ नहीं आ जाता। पढ़ी लिखी सैकड़ों लड़कियाँ मैंने देखी हैं, जिन्हें न आचार आता है, न व्यवहार। फिर इतनी ऐंठ किस बात की ? शहर में रहती हो, इसीसे इतनी जीभ चलती है। किसी गाँव में होती, तो जाति से भी निकाल दी गई होती ! गावों में लड़कियाँ घर सँभालती हैं। मगर बूआ ममता के जाल में असलियत देखना भूल गईं। पर अब तो वह सब मैं नहीं होने दूँगा। तुम कहोगी कि तुम्हें किसी की चिन्ता नहीं, क्योंकि तुम पढ़ी लिखी हो, कोई नौकरी कर सकती हो, मास्टरनी बन सकती हो, किन्तु संसार जानता है कि नौकरी पेशा औरतों का चाल चलन ठीक नहीं रह सकता ! मैं देखूँगा कि कैसे दूध की धुली हुई रहती हो !'

तंगम् कुछ समझ नहीं सकी। विक्षोभ के कुहरे में अव्यक्त स्नेह छिप गया। क्या कह रहा है यह व्यक्ति ? कल तक अनजान था, आज अचानक कैसे एकदम मालिक बन गया ? और अपने ही घर में तंगम् कैसे एकाएक पराई हो गई ? केवल इसलिये कि वह स्त्री है! उसने विक्षोभ की आतुरता से नरसप्पा को देखा। वह निर्निमेष उसकी ओर घूर रहा था। तंगम् लकड़ी की तरह निर्जीव हो गई। समाज कानून की आरी लेकर उसे बीच से चीरता नजर आया।

उसने अपना सिर एक निश्चय से हिलाया, और गंभीरता से

बोली—'नरसप्पा, इस घर में तुम्हारा कोई अधिकार नहीं ! समझे ? इससे पहले कि मैं तुमसे निकल जाने को कहूँ, यदि शर्मदार हो, तो अपने आप चले जाओ !'

नरसप्पा उठ खड़ा हुआ। उसने अपने अँगौछे को फटकार कर कन्धे पर रख लिया, और दृढ़ता से बोला—'तंगवल्ली, मुझसे कहती हो कि घर से निकल जाओ। लेकिन तुम यह नहीं जानती कि घर का उत्तराधिकारी अपने घरसे निकल कर नहीं जाता ! जो उसकी करुणा पर पड़े रहते हैं, उन्हें ही जाना पड़ता है !'

तंगवल्ली की आँखों के सामने एक बार गहरा अँधेरा काँप उठा। फिर अचानक ही वह हँस उठी। उसने कहा—'तो यह घर तुम्हारा है ? बूआ के घर के टुकड़ों पर तुम पले हो कि मैं ?'

नरसप्पा ने अविचलित स्वर में उत्तर दिया—'दोनों ! किन्तु तुम स्त्री हो, मैं पुरुष। मेरा अधिकार पहला है। तुम्हारा मैं दूर का मामा हूँ, किन्तु बूआ का मैं भानजा हूँ।'

तंगवल्ली ठठा कर हँस पड़ी। उसने उसी उन्माद में कहा—'नरसप्पा को नशा नहीं करना था ! और अगर शराब ही पीनी थी, तो पीकर भानजी के सामने नहीं आना था ! समझे ? तुम अपने को उनका भनजा कहते हो, लेकिन बूआ के भी कोई बहिन थी, ऐसा तो कोई नहीं जानता।'

नरसप्पा पीछे हट गया। उसने घूर कर कहा—'बेटी रानी की यह बात अजीब नहीं ! उसकी माँ ही तो तन्जाऊर की थी। तन्जाऊर के लोगों को कौन नहीं जानता ? लेकिन नरसप्पा ने घास खोद कर इतनी उमर नहीं गँवाई है ! समझी ?'

तंगम् लुब्ध हो उठी। कितना लोभी है यह युवक और

वह अपने आप पर क्षण भर के लिये लज्जित हो गई। इसी का बाह्य रूप देख कर वह इतनी विह्वल हो गई थी, इसके प्रति उसके हृदय में सौहार्द्र जाग उठा था। एक पल के लिये उसने सोचा था वे दोनों सदा के लिये बँध जाते।...किन्तु आज? यह नहीं हो सकता, क्योंकि सब कुछ होने पर भी आन्डालम्मा की बेटी भामा मौजूद है। अब समझ में आया कि भीतर ही भीतर कैसी यंत्रणा भरी कुचक्र की छाया डोल रही थी। ये लोग आज से नहीं बहुत पहले से भीतर ही भीतर षड्यंत्र रच रहे थे। और आज सब ओर से किलाबन्दी करके वे उसे ही निकाला चाहते हैं। यह कभी नहीं होगा। इसी से नरसप्पा अब सदा के लिये यहाँ आना चाहता है। पापी! तब तंगम् कहाँ रहेगी?

भविष्य का अन्धकार उसकी आँखों के सामने गाढ़ा हो छा गया। एक एक कर के समस्त छलना उसके सामने स्पष्ट हो गई। यह जो सुन्दर दीखता है, वास्तव में भीतर से विषधर से भी अधिक भयानक है। अवरुद्ध क्रोध के कारण तंगम् की आँखों में आँसू छलक आये, जैसे किसी ने उसके अभिमान को मुट्ठी में भर कर मसल दिया हो।

नरसप्पा इस परिवर्त्तन को देख कर बोला—'मेरे टुकड़ों पर पड़ी रहो, तो किसी गरीब से ब्याह करा दूँगा! नहीं तो जाकर किसी स्कूल में इज्ज़त बेचो! मैं बूआ का उत्तराधिकारी हूँ। समझी? यह देखो!' कह कर नरसप्पा ने जनेऊ में बँधी चाभी से सन्दूक खोल कर एक कागज निकाला, और उसे खोल कर तंगम् की ओर उठा दिया। फिर कहा—'देखा, यह क्या है?'

यह मृत्यु शैया पर पड़े पड़े मेरी बूआ ने मुझे यह लिखवाया था। मालूम देता है, यह तुम्हारा ही लिखा हुआ है!'

तंगम ने देखा। एक जोर का चक्कर आया। सिर पकड़ कर वह वहीं बैठ गई।

कमरे में नरसप्पा का वीभत्स अट्टहास दीवारों से टकरा कर गूँजने लगा। तंगम् सचमुच अब नरसप्पा की दया की भिखारिणी थी। वह अट्टहास स्त्री के अधिकारों पर वज्राघात के कठोरवाद की भाँति तड़प तड़प कर फैल रहा था। उस पैशाचिक विजय की कलुषित छाया में नरसप्पा ने देखा, तंगवल्ली मूर्छित पड़ी थी। एक बार उसने गर्व से उसकी ओर देखा और कागज मोड़ कर जेब में रख लिया। एक विषाक्त मुस्कराहट उसके होठों पर काँप उठी।